संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

॥ ऋषि प्रसाद ॥

हिन्दी

वर्ष : १०
अंक : ८०
अगस्त ९९

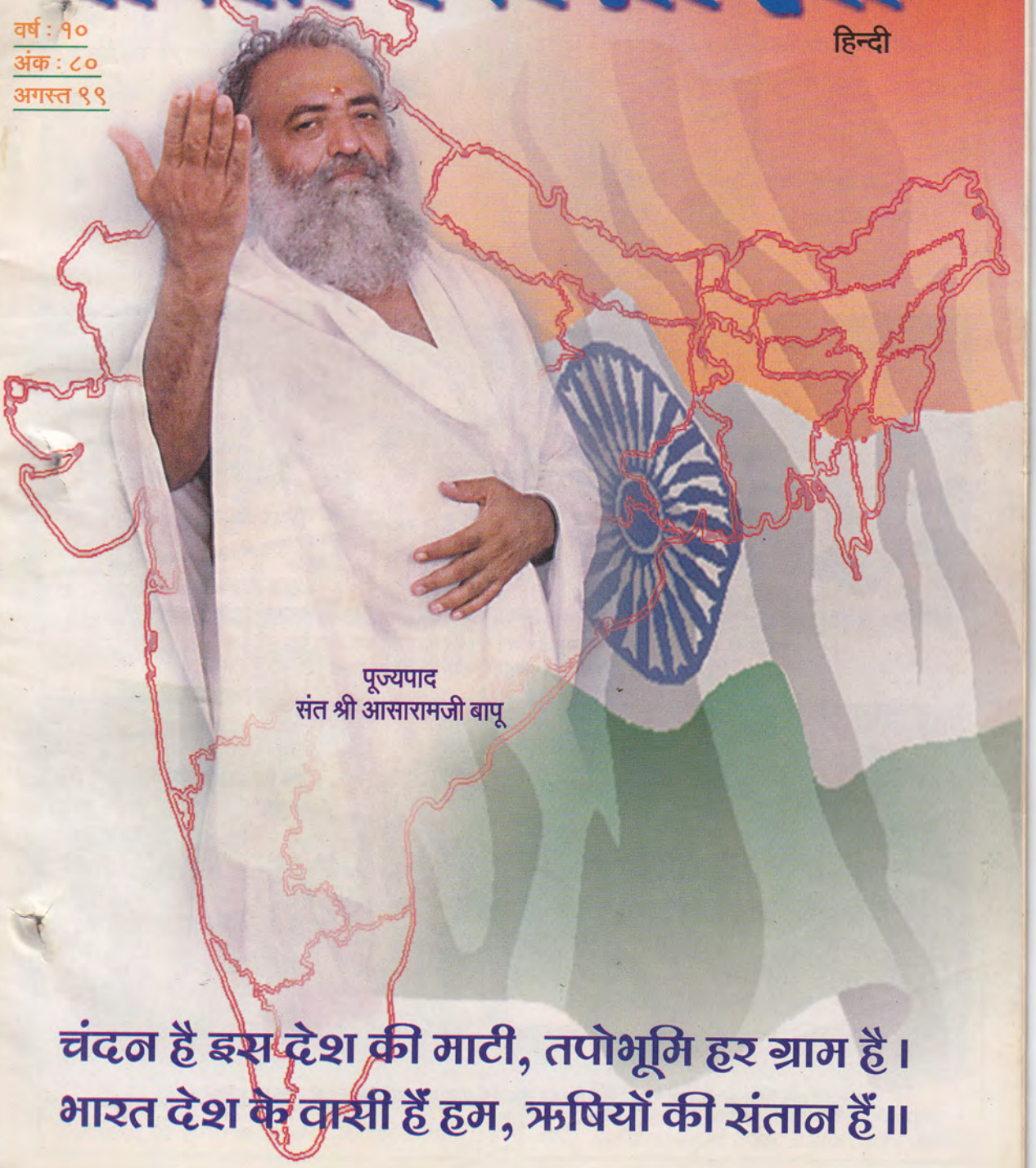

पूज्यपाद
संत श्री आसारामजी बापू

चंदन है इस देश की माटी, तपोभूमि हर ग्राम है।
भारत देश के वासी हैं हम, ऋषियों की संतान हैं॥

ऋषि प्रसाद

वर्ष : १०
अंक : ८०
९ अगस्त १९९९
सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा
मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क
भारत में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रू. २००/-
(३) आजीवन : रू. ५००/-
नेपाल व भूटान में
(१) वार्षिक : रू. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रू. ३००/-
(३) आजीवन : रू. ७५०/-
(डाक खर्च में वृद्धि के कारण)
विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 30
(२) पंचवार्षिक : US $ 120
(३) आजीवन : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं पूर्वी प्रिन्टर्स, राजकोट में छपाकर प्रकाशित किया।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

१. जीवन-पाथेय २
★ साधकों का पथ-प्रदर्शन
२. भागवत-अमृत ६
★ महर्षि कर्दम एवं देवहूति का दिव्य चरित्र
३. श्रीयोगवाशिष्ट महारामायण १०
★ शिला में सृष्टि
४. जीवन-सौरभ १२
★ प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज : एक दिव्य विभूति
५. पर्व मांगल्य १४
★ शुभ संकल्पों का पर्व रक्षाबंधन
६. संस्कृति दर्शन १७
★ मंदिर टूटने से बच गया...
७. नारी ! तू नारायणी १९
★ रतनबाई की गुरुभक्ति
८. युवा जागृति संदेश २०
★ जिसके चरणों को रावण तक न हिला सका...
९. सत्संग मंजरी २२
★ सौ अश्वमेध यज्ञों का फल
१०. प्रेरक प्रसंग २४
★ केवल पानी की दो बूँदें माँगीं ?
★ पहाड़ी पर भोजन
११. जीवन पथदर्शन २५
★ एकादशी व्रत
१२. शरीर-स्वास्थ्य २६
★ कंकोड़ा या खेखसा
१३. योगयात्रा २७
★ गुरुकृपा का अनोखा चमत्कार
★ मेरी बहन को जीवनदान मिला...
१४. संस्था-समाचार २८

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग
SONY चैनल पर 'ऋषि प्रसाद' रोज सुबह ७.३० से ८

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

साधकों का पथ-प्रदर्शन

[संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से]

जब साधक परमात्मा के साक्षात्कार के लिए तन-मन से संकल्पित होता है तो उसके रग-रग में परमात्मप्राप्ति की अनुभूति के लिए तीव्र उत्कंठा होती है। उसका एकमात्र लक्ष्य परमात्मा ही होता है लेकिन साधना में कुछ त्रुटियों और कमियों की वजह से वह अपने परम लक्ष्य की ओर उतनी तेजी से अग्रसर नहीं हो पाता जितना कि उसे होना चाहिए।

साधक को एकान्त में शुभ-अशुभ सभी संकल्पों को त्याग करके, अपने सच्चिदानंद परमात्मस्वरूप में स्थिर होना चाहिए। घोड़े के रकाब में एक पैर डाल दिया तो दूसरा पैर भी जमीन से उठा लेना पड़ता है। ऐसे ही सुख की लालच मिटाने के लिए यथायोग्य निष्काम कर्म करने के बाद, निष्काम कर्मों से भी समय बचाकर एकान्तवास, लघु भोजन, देखना-सुनना आदि इन्द्रियों का संयम करते हुए साधक को कठोर साधना में उत्साहपूर्वक संलग्न हो जाना चाहिए। कुछ महीने बन्द कमरे में एकाकी रहने से धारणा तथा ध्यान की शक्ति बढ़ जाती है। आन्तर आराम, आन्तर सुख, आन्तर सामर्थ्य प्रकट होने लगता है। धारणा ध्यान में परिणत होती है। हर साधक को कम-से-कम वर्ष में एक बार, अपनी उम्र के जितने वर्ष हों उतने दिन तो मौन-मंदिर की साधना करनी ही चाहिए क्योंकि एकान्त का अपना महत्त्व होता है। उस समय मन-बुद्धि संसारी चर्चाओं से मुक्त होते हैं तो उन्हें आराम मिलता है। चिन्तारहित मन-बुद्धि में तत्त्वज्ञान का सत्संग जितनी दृढ़ता से जमता है उतना और कहीं नहीं जमता।

हमारी जीवन-शक्ति का ह्रास मूलतः वाणी के क्षय से, संकल्प-विकल्पों की जाल बुनने से और वीर्यनाश से होता है। वाणी के अनावश्यक क्षय से बचना मानसिक शांति की कुंजी है। वाणी का उपयोग उतना ही होना चाहिए जितना आवश्यक हो। जैसे, हम तार करते समय संतुलित शब्दों को प्रयुक्त करते हैं और पैसे बचा लेते हैं, वैसे ही कम-से-कम बोलें और अपनी जीवन-शक्ति के व्यर्थ क्षय को बचा लें। संकल्पों-विकल्पों को रोकने के लिए बारम्बार दीर्घ प्रणव का जप एक अमोघ साधन है। जैसे 'हरिः ॐ....' यह ह्रस्व जप है। 'हरिः ॐ.....' यह दीर्घ जंप है। 'हरिः ॐ.....' यह प्लुत जप है।

"जब कभी-भी अपने मन में अशुद्ध विचारों के साथ किसी स्त्री के स्वरूप की कल्पना उठे तो आप 'ॐ दुर्गा देव्यै नमः।' इस मंत्र का बार-बार उच्चारण करें और उन्हें मानसिक प्रणाम करें ताकि आप पतन से बच जाएँ।"

प्रणव का जप मन को संकल्पों-विकल्पों से छुड़ाकर शांत पद में आरूढ़ होने में सहायता करता है। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए ब्रह्मचर्य पर लिखी एक पुस्तक **'यौवन सुरक्षा'** में निर्दिष्ट उपायों का अवलम्बन लेकर ब्रह्म-परमात्मा में पहुँचना चाहिए। अपने स्वास्थ्य

व जीवन को उन्नत करने के लिए **'यौवन सुरक्षा'** बार-बार पढ़ना चाहिए और अपने प्रियजनों का परम हित करने के लिए उन्हें भी **'यौवन सुरक्षा'** की ओर मोड़ना चाहिए जिससे उनका भी मंगल हो।

भगवान शंकर ने कहा है :

''बिन्दु अर्थात् वीर्यरक्षण सिद्ध होने के बाद कौन-सी सिद्धि है, जो साधक को प्राप्त नहीं हो सकती ?''

साधक से गलती यह होती है कि साधना में सतत संलग्न होने के बाद भी उसकी वह उन्नति नहीं हो पाती, जो होनी चाहिए। जबकि वीर्यरक्षण के द्वारा जो साधक अपने वीर्य को ऊर्ध्वगामी बनाकर योगमार्ग में आगे बढ़ते हैं, वे कई प्रकार की सिद्धियों के मालिक बन जाते हैं। ऊर्ध्वरेता योगी पुरुष के चरणों में समस्त सिद्धियाँ दासी बनकर रहती हैं। ऐसा योगी पुरुष जल्दी आत्म-साक्षात्कार कर सकता है। स्वामी शिवानंदजी अक्सर कहा करते थे कि :

''जब कभी-भी अपने मन में अशुद्ध विचारों के साथ किसी स्त्री के स्वरूप की कल्पना उठे तो आप **'ॐ दुर्गा देव्यै नमः।'** इस मंत्र का बार-बार उच्चारण करें और उन्हें मानसिक प्रणाम करें ताकि आप पतन से बच जाएँ।''

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए एक मंत्र भी है :

ॐ नमो भगवते महाबले पराक्रमाय मनोभिलाषितं मनः स्तंभ कुरु कुरु स्वाहा।

रोज दूध में निहारकर २१ बार इस मंत्र का जप करें और वह दूध पी लें। इससे लाभ होता है।

जब तक परम पद की प्राप्ति न हो तब तक साधक को खूब सावधान रहना चाहिए। आपके माने हुए मित्र एक प्रकार से आपके गहरे शत्रु हैं। वे किसी-न-किसी प्रकार से आपको संसार में, नाम-रूप की सत्यता में घसीट लेते हैं। आपकी सूक्ष्म वृत्ति उनके परिचय में आने से फिर स्थूल होने लगती है और पता भी नहीं चलता। अतः सावधान ! उन सांसारिक व्यक्तियों से मिलने के कारण आपके नये आध्यात्मिक संस्कार और ध्यान की एकाग्रता लुप्त हो जाएगी।

संसारी और साधक दोनों की विचारधाराएँ पृथक्-पृथक् होती हैं। फिर भी साधक को आविस्कार रहना तो संसार में ही है। अतः संसार से भागकर नहीं, वरन् युक्ति से काम बनाना होगा। परमात्मा स्वयं साधु पुरुषों की जिह्वा पर विराजमान होकर ये युक्तियाँ बताते हैं।

वीर्यरक्षण के द्वारा जो साधक अपने वीर्य को ऊर्ध्वगामी बनाकर योगमार्ग में आगे बढ़ते हैं, वे कई प्रकार की सिद्धियों के मालिक बन जाते हैं। ऊर्ध्वरेता योगी पुरुष के चरणों में समस्त सिद्धियाँ दासी बनकर रहती हैं। ऐसा योगी पुरुष जल्दी आत्म-साक्षात्कार कर सकता है।

'मन और इन्द्रियों की एकाग्रता ही परम तप है'- ऐसा आदिगुरु श्री शंकराचार्यजी का मत है। तमाम प्रकार के धर्मों का अनुष्ठान करने से भी एकाग्रतारूपी धर्म, एकाग्रतारूपी तप श्रेष्ठ है। हम देखते हैं कि जिस-जिस व्यक्ति के जीवन में जितनी-जितनी एकाग्रता होती है, वह उतने ही अंश में उस-उस क्षेत्र में सफल होता है।

साधनाकाल में संसारी लोगों से अनावश्यक मिलना-जुलना बहुत ही अनर्थकारी होता है। दोनों की विचारधाराएँ उत्तर-दक्षिण होती हैं। संसारी व्यक्ति बातचीत का शौकीन होता है, नश्वर भोगप्राप्ति उसका लक्ष्य होता है जबकि साधक का

लक्ष्य शाश्वत परमात्मा होता है । संसारियों की बातचीत का फल किसीके प्रति राग-द्वेष होता है और उनकी बातों में प्रीति होने पर जगत की सत्यता दृढ़ होती है । उनकी जिह्वा वाणी के अतिसार से पीड़ित होती है, जबकि साधक मितभाषी, आध्यात्मिक विषयों पर ही प्रसंगानुसार बोलनेवाला होता है। परन्तु लौकिक भावों से प्रभावित होकर अपनी अंतरात्मा की पुकार के विपरीत भी वह संसार की हाँ-में-हाँ करने लगे अथवा उनके संपर्क में आकर बलात् संसार में खिंच जाय तो उसकी वर्षों की कठोर साधना के द्वारा प्राप्त योगारूढ़ता क्षीण होने लगती है ।

हमारी जीवन-शक्ति का ह्रास मूलतः वाणी के क्षय से, संकल्प-विकल्पों की जाल बुनने से और वीर्यनाश से होता है । वाणी के अनावश्यक क्षय से बचना मानसिक शांति की कुंजी है ।

साधनकाल में रुकावटें, बाधाएँ नहीं आयीं तो साधकरूपी स्वर्ण उतना निखरता भी नहीं है । कसौटियाँ ही तो आपको परिपक्व बनाती हैं ।

संसारियों का चिन्तन ऐहिक सुख के विषयों से ग्रस्त होता है जबकि साधक का चिंतन दिव्य अनुभूतियों से सुसंपन्न होता है । संसारी व्यक्ति सदा स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों से प्रेरित होकर कार्य करता है जबकि साधक समग्र संसार को अपना स्वरूप समझकर निःस्वार्थभाव से अहंकार विसर्जित करने के लिए सेवा करता है । संसारी व्यक्ति के पास जो भोग-सामग्रियाँ हैं उन्हें वह बढ़ाना चाहता है और भविष्य के लिए भी ऐन्द्रिक सुखों के साधनों की व्यवस्था करता है। साधक सारे ऐन्द्रिक विषयों को व्यर्थ समझकर इन्द्रियातीत, देशातीत, कालातीत, गुणातीत आत्मसुख एवं परमात्म-स्थिति चाहता है ।

वेदान्त आपसे नौकरी-धन्धा अथवा संसार नहीं छुड़ाता वरन् उसमें जो सत्यबुद्धि है, जो आसक्ति है उसे छुड़ाकर संसार के स्वामी से भेंट करा देता है ।

संसारी व्यक्ति जटिलता, बहुलता, रोगों के घर देह, क्षणभंगुर भोग और सुख की तुच्छ वासना में मँडराता रहता है जबकि साधक सरल व्यक्तित्व से संपन्न होता है, देह से और तुच्छ भोगों से पार आत्मसुख का अभिलाषी होता है ।

इस प्रकार संसारी और साधक दोनों की विचारधाराएँ पृथक्-पृथक् होती हैं । फिर भी साधक को आखिरकार रहना तो संसार में ही है । अतः संसार से भागकर नहीं, वरन् युक्ति से काम बनाना होगा । परमात्मा स्वयं साधु पुरुषों की जिह्वा पर विराजमान होकर ये युक्तियाँ बताते हैं । संत तुलसीदासजी से परमात्मा ने कितनी सुन्दर युक्ति कहलवायी है !

तुलसी जग में यूँ रहो, ज्यों रसना मुख माँहि ।
खाती घी अरु तेल नित, फिर भी चिकनी नाँहि ॥

हम संसार में रहें, संसार के स्वामी के सेवक होकर । साधक संसार में रहता है मगर निर्लेप । वह सुविधाओं का उपयोग करता है, उपभोग नहीं । वेदान्त आपसे नौकरी-धन्धा अथवा संसार नहीं छुड़ाता वरन् उसमें जो सत्यबुद्धि है, जो आसक्ति है उसे छुड़ाकर संसार के स्वामी से भेंट करा देता है ।

संतों ने कितनी मार्मिक बात कही है !

साधक के पास जितने रुपये, विद्या, शक्ति,

सामग्रियाँ आदि हैं, उतने से ही वह संसार की बड़ी-से-बड़ी सेवा कर सकता है। हम प्रभु से तत्त्वज्ञान चाहते हैं परंतु इसमें साधक की यह मान्यता ही सबसे बड़ी भूल है कि, 'इतना साधन करेंगे... इतना जप-अनुष्ठान करेंगे... ऐसी-ऐसी वृत्तियाँ बनेंगी... इतना अन्तःकरण शुद्ध होगा... इतना वैराग्य होगा... ऐसी अवस्था-योग्यता होगी... तब कहीं परमात्मा की प्राप्ति होगी।' जिस क्षण साधक के भीतर यह उत्कट अभिलाषा जागृत हो जाय कि परमात्मा अभी ही प्राप्त होना चाहिए, तो अभी... इसी क्षण उसे तत्त्व की प्राप्ति हो सकती है।

हृदयरूपी दीवार पर स्वर्णिम अक्षरों से लिख लो कि : "हजार बार असफलता मिलने के बाद भी सफलता की एक और उम्मीद अभी शेष है।"

सच्चे हृदय से प्रार्थना, जब भक्त सच्चा गाय है।
भक्तवत्सल के कान में, वह पहुँच झट ही जाय है।।

ज्ञानप्राप्ति के लिए साधक की जिज्ञासा जब जोर पकड़ती है तब कुछ मुश्किल नहीं। यह काम दिन-महीनों-सालों पर निर्भर नहीं करता वरन् यह उसकी तीव्रता पर निर्भर है। यह वह 'डिग्री' (उपाधि) है जिसे जिज्ञासु साधक क्षणभर में प्राप्त कर सकता है, लेकिन शर्त यह है कि वह साधना में सतत लगा रहे। जिन कारणों से गति नहीं हो पाती, उन पर सद्गुरु के, भगवद्कृपा-प्राप्त महापुरुषों के सत्संग से, सत्शास्त्रों के अध्ययन से युक्तियाँ पाकर विजय प्राप्त करे और आखिरकार पहुँच जाए उस प्रियतम के द्वार तक।

यदि साधनकाल में रुकावटें, बाधाएँ नहीं आयीं तो साधकरूपी स्वर्ण उतना निखरता भी नहीं है। कसौटियाँ ही तो आपको परिपक्व बनाती हैं। फिर घबराहट किस बात की ? आपके पास गुरुमंत्र है, सत्संग है, ध्यान की विविध पद्धतियाँ हैं। बस... एक बार ईमानदारी से चलना आरंभ करके तो देखो ! फिर आपको ज्यादा चलना नहीं पड़ेगा। आपको अपनी मंजिल अपने-आपमें नजर आएगी। आप खुद, साधक खुद ही सिद्ध हो जाएगा।

इन वचनों को हृदयरूपी दीवार पर स्वर्णिम अक्षरों से लिख लो कि : "हजार बार असफलता मिलने के बाद भी सफलता की एक और उम्मीद अभी शेष है।"

बस... जुटे रहो।

*

पूज्यश्री की अमृतवाणी पर आधारित ऑडियो-विडियो कैसेट, कॉम्पेक्ट डिस्क व सत्साहित्य रजिस्टर्ड पोस्ट पार्सल से मँगवाने हेतु

(१) ये वस्तुएँ रजिस्टर्ड पार्सल द्वारा भेजी जाती हैं।
(२) इनका पूरा मूल्य अग्रिम डी. डी. अथवा मनीऑर्डर से भेजना आवश्यक है।

(A) कैसेट व कॉम्पेक्ट डिस्क का मूल्य इस प्रकार है :

10 ऑडियो कैसेट	:	मात्र	Rs. 241/-
3 विडियो कैसेट	:	मात्र	Rs. 435/-
4 कॉम्पेक्ट डिस्क (C. D.)- भजन	:	मात्र	Rs. 441/-
4 कॉम्पेक्ट डिस्क (C. D.)- सत्संग	:	मात्र	Rs. 541/-

इसके साथ सत्संग की दो अनमोल पुस्तकें भेंट

★ डी. डी. या मनीऑर्डर भेजने का पता ★

कैसेट विभाग, संत श्री आसारामजी महिला उत्थान आश्रम, साबरमती, अमदावाद-380005.

(B) सत्साहित्य का मूल्य इस प्रकार है :

हिन्दी किताबों का सेट	:	मात्र	Rs. 431/-
गुजराती "	:	मात्र	Rs. 373/-
अंग्रेजी "	:	मात्र	Rs. 100/-
मराठी "	:	मात्र	Rs. 118/-

★ डी. डी. या मनीऑर्डर भेजने का पता ★

श्री योग वेदान्त सेवा समिति, सत्साहित्य विभाग, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती , अमदावाद-380005.

नोट : अपना फोन हो तो फोन नंबर एवं पिन कोड अपने पते में अवश्य लिखें।

महर्षि कर्दम एवं देवहूति का दिव्य चरित्र

[संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से]

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता ।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥

(श्रीमद्भागवत : १.२.९,१०)

'धर्म का फल है मोक्ष । उसकी सार्थकता अर्थ प्राप्ति में नहीं है । अर्थ केवल धर्म के लिए है । भोग-विलास उसका फल नहीं माना गया है। भोग का फल इन्द्रियों को तृप्त करना नहीं है । उसका प्रयोजन है केवल जीवन-निर्वाह । जीवन का फल भी तत्त्वजिज्ञासा है । बहुत कर्म करके स्वर्गादि प्राप्त करना उसका फल नहीं है ।'

जिस राजा के राज्य में प्रजा सुखी होती है वह राजा प्रजा का प्रेमपात्र होता है । जिस राजा के राज्य में प्रजा दुःखी होती है वह राजा नरक का अधिकारी है- ऐसा शास्त्र कहते हैं ।

धर्म का फल संसार के बंधनों से मुक्ति तथा भगवान की प्राप्ति करना है । उससे यदि कुछ सांसारिक सम्पत्ति उपार्जित कर ली तो यह उसकी कोई सफलता नहीं है । उसकी वास्तविक सफलता तो यह है कि वास्तविक तत्त्व को, भगवत्तत्त्व को जानने की शुद्ध इच्छा हो ।

धन भोगवासना में डूब मरने के लिए नहीं, अपितु धर्म के लिए है । धर्म धनप्राप्ति के लिए नहीं है, वरन् भगवत्प्राप्ति के लिए है । धर्म संयम का मार्ग दिखलाकर अपने स्वरूप में, आत्मस्वरूप में ले आता है । आज का आदमी बोलता है कि : 'हम तो गृहस्थी हैं... हम तो संसारी हैं...'

अरे ! मनु महाराज... सात समुद्रवाली पृथ्वी के एकछत्र सम्राट स्वयम्भू मनु, जिनकी राजधानी बर्हिष्मती पुरी समस्त संपदाओं से युक्त थी, वे भी धर्म का कितना रहस्य जानते थे ! मनु महाराज ने भारद्वाजजी को जो उपदेश दिया है, वही 'मनुस्मृति' के नाम से विख्यात है । जिन्होंने भारद्वाज ऋषि को धर्म का उपदेश दिया था, वे ही मनु महाराज अपनी कन्या को लेकर वहाँ गये जहाँ कर्दम ऋषि तपस्या कर रहे थे ।

कर्दम ऋषि भी कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे । वे ब्रह्माजी के मानस पुत्र थे । कर्दम ऋषि ने ब्रह्माजी से पूछा :

''पिताजी ! क्या आज्ञा है ?''

पिता की खुशी का वही दिन है जब पुत्र कहे कि 'पिताजी ! क्या आज्ञा है ? मैं आपकी कौन-सी इच्छा पूरी करूँ ?' समझो उस दिन पिता का पिता होना सार्थक हो गया । स्वस्थ शरीर, मधुरभाषिणी पत्नी और आज्ञाकारी पुत्र- यह गृहस्थ जीवन का सुख माना गया है । ऐशो-आराम में गरकाव होना और डिस्को करना, शराब पीना एवं पत्नी बदलना- इस पिशाची जीवन को गृहस्थाश्रम का सुख नहीं माना गया।

कर्दम ऋषि द्वारा पूछे जाने पर ब्रह्माजी ने

कहा : ''बेटा ! सृष्टि का विस्तार करो।''

कर्दम ऋषि : ''पिताजी ! सृष्टि का विस्तार करने के लिए कुछ योग्यता, कुछ सामर्थ्य हो तभी सृष्टि की परंपरा अच्छे से चल सकेगी। आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए मैं जाता हूँ तप करने।''

कर्दम ऋषि तप करने के लिए निकल पड़े।

तप भी तीन प्रकार का होता है : शारीरिक तप, वाचिक तप और मानसिक तप।

जो अन्नमय शरीर में रहते हैं उनके लिए तीर्थयात्रा करना, शरीर को कष्ट देना- यह तप है। जो प्राणमय शरीर में रहते हैं उनके लिए प्राणायाम-आसन आदि करना तप है। जो मनोमय शरीर में रहते हैं उनके लिए भक्तिभाव, आराधना आदि मानसिक तप है। विज्ञानमय एवं आनंदमय शरीर में जिनकी चेतना रहती है, ऐसे लोगों के लिए ध्यान और तत्त्व-विचार करना तप है।

...लेकिन सब तपों से बढ़कर एकाग्रता को परम तप माना गया है।

तपःसु सर्वेषु एकाग्रता परं तपः।

कर्दम ऋषि उसी एकाग्रता में लग गये। उनकी एकाग्रता ने इतना जोर पकड़ा कि भगवान आदिनारायण उनके आगे प्रगट हो गये। उन्होंने कर्दम ऋषि को दर्शन दिये और वरदान देते हुए कहा :

''तुम्हें सृष्टि-विस्तार की सेवा करनी है। अतः तुम्हारा विवाह होगा महाराज स्वयम्भू मनु की पुत्री देवहूति के साथ। महाराज मनु स्वयं अपनी कन्या लेकर तुम्हारे पास आयेंगे। उस कन्या देवहूति से तुम्हारी नौ कन्याएँ होंगी। उन कन्याओं से लोकरीति के अनुसार मरीचि आदि ऋषिगणों के द्वारा पुत्र उत्पन्न होंगे।

कृत्वा दयां च जीवेषु दत्त्वा चाभयमात्मवान्।

तुम संयमी बनोगे, जीवों पर दया करोगे, सबको अभयदान करोगे और मुझको सबमें और सबको मुझमें देखोगे। मैं तुम्हारा बेटा बनूँगा और सांख्य दर्शन का उपदेश करूँगा।''

यह वरदान देकर भगवान अंतर्धान हो गये। यहाँ उचित समय पर महाराज मनु अपनी पत्नी के साथ अपनी सुशील सुकन्या देवहूति को ले आये। कर्दम ऋषि ने महाराज मनु का आतिथ्य सत्कार किया एवं सबको आसन दिया। मनु-शतरूपा तो आसन पर बैठ गये किन्तु देवहूति सयानी हो चुकी थी। उसने सोचा :

'ये मेरे होनहार पति हैं। अगर उनके बिछाये हुए आसन पर मैं बैठ जाऊँ तो यह पत्नीधर्म के विरुद्ध होगा और अगर अस्वीकार कर दूँ तो उनकी अवज्ञा होगी।'

अतः उस चतुर सुकन्या देवहूति ने न आसन की अवज्ञा की और न ही उस पर बैठी, वरन् अपना दायाँ घुटना और दायाँ हाथ आसन पर रखा, जिससे ऋषिवर का आसन स्वीकार भी हो गया और ऋषि की मर्यादा का पालन भी हो गया।

फिर कुशलक्षेम पूछते हुए कर्दम ऋषि मनु महाराज से बोले :

वेदान्त का तत्त्वज्ञान सुनना या सुनाना इतना कठिन नहीं है जितना जप-ध्यान करना कठिन है। जप-ध्यान करना भी इतना कठिन नहीं है जितना अपनी इच्छा को पति की इच्छा में मिलाकर सेवा कर लेना।

पत्थर या धातु की मूर्ति में भगवद्बुद्धि करके पूजा और आदर करने से सामर्थ्य आता है, चित्त शुद्ध होता है।

''आपका यह पौरा संतों की रक्षा एवं दुष्टों के नाश के लिए है क्योंकि आपमें भगवान की पालनशक्ति है। सब देवताओं की शक्ति राजा में रहती है। यदि आप विचरण न करें व दुष्टों को दण्ड न दें तो उनको भय न रहेगा और पृथ्वी पर दुष्टता बढ़ जायेगी। राजा को तो ऐसा उग्रदण्डी होना चाहिए कि किसी को उच्छृंखल होने की हिम्मत न हो। यदि दण्डनीति शिथिल हो गयी तो वेदधर्म का नाश हो जायेगा।

राजन्! राज्य में प्रजा को पानी तो साफ-सुथरा मिलता है न? प्रजा को अन्न, फल-फूल, दूध आदि तो ठीक से मिलता है न? प्रजा के गरीब वर्ग का अधिक शोषण तो नहीं होता? धनाढ्य लोग गरीबों का ख्याल तो करते हैं न? गरीब लोग धनाढ्यों को देखकर जलते तो नहीं हैं न? प्रजा के छोटे-से-छोटे एवं बड़े-से-बड़े वर्ग, सबको आप अपनी संतान की नाईं ही देखते हैं न? महाराज! जिस राजा के राज्य में प्रजा सुखी होती है वह राजा प्रजा का प्रेमपात्र होता है। जिस राजा के राज्य में प्रजा दुःखी होती है वह राजा नरक का अधिकारी है- ऐसा शास्त्र कहते हैं। हे राजन्! आपके राज्य में प्रजा सुखी तो है न?''

राजा यदि दुष्टों को दण्ड न दें तो दुष्टों को भय न रहेगा। पृथ्वी पर दुष्टता बढ़ जायेगी। राजा को तो ऐसा उग्रदण्डी होना चाहिए कि किसीको उच्छृंखल होने की हिम्मत न हो। यदि दण्डनीति शिथिल हो गयी तो वेदधर्म का नाश हो जायेगा।

तब मनु महाराज बोले : ''हे ऋषिवर! आप धन्य हैं। आपने तो आवभगत करते-करते, कुशल समाचार पूछते-पूछते राजा का कर्त्तव्य क्या है और प्रजा सुखी कैसे रहे इन सभी बातों की जानकारी दे डाली। महाराज! आपको मेरे प्रणाम हैं।''

कर्दम ऋषि : ''अच्छा राजन्! अब यह बताइए कि इस समय यहाँ आपका आगमन किस प्रयोजन से हुआ है?''

मनु महाराज : ''हे ऋषिवर! हमने सुना है कि आप विवाह के इच्छुक हैं। भगवान आदिनारायण ने भी हमें ऐसी ही प्रेरणा दी है और यह कन्या देवहूति आपके योग्य है। यह जितनी सुन्दर है उतना ही इसका चरित्र भी उज्ज्वल और पवित्र है।''

कर्दम ऋषि : ''राजन्! आपकी कन्या के विषय में मैंने नारदजी से सुन रखा है कि एक बार यह आपके महल की छत पर गेंद खेल रही थी, तब इसके सौन्दर्य को देखकर विश्वावसु नामक गंधर्व मूर्च्छित होकर गिर पड़ा था। यह इतनी सुन्दर है और अभी इसके व्यवहार को देखकर भी मैंने जान लिया है कि यह शील, सदाचार और ज्ञान में भी सुंदर है। अतः मैं आपकी इस साध्वी कन्या से विवाह तो कर सकता हूँ लेकिन एक शर्त के साथ।

वह शर्त है कि मैं सदैव गृहस्थी के दलदल में ही फँसा नहीं रहना चाहता। अतः जब तक इसको संतान नहीं हो जायेगी, तभी तक मैं गृहस्थ-धर्मानुसार इसके साथ रहूँगा। बाद में मैं संन्यास धारण कर लूँगा और अपने को उन परब्रह्म परमात्मा में स्थित करूँगा जिनसे इस विचित्र जगत की उत्पत्ति हुई है, जिनके आश्रय से यह स्थित है और जिनमें यह लीन हो जाता है।''

मनु महाराज सहमत हुए। उन्होंने शास्त्रोक्त विधि से देवहूति का कन्यादान पेड़ के नीचे बैठे हुए महर्षि कर्दम को कर दिया। फिर वे अपनी राजधानी की ओर चल पड़े।

कितना आदर है ज्ञान का! कितना आदर है तप का! कितना आदर है संयम और सदाचार का!

तुम भी अपने जीवन में वह ओज लाओ, तेज लाओ, तन्दुरुस्ती लाओ और बल लाओ ताकि तुम्हारा जीवन भी महके... तुम्हारा जीवन भी आत्मा-परमात्मा के सुख का अनुभव करे।

देवहूति तन-मन से कर्दमजी की सेवा में लग गयी। यद्यपि वह राजपुत्री थी, अत्यंत प्यार में पली थी एवं कर्दम ऋषि के पास न तो रहने के लिए घर था, न सोने के लिए चारपाई थी, न बिछाने के लिए वस्त्र था और न खाने के लिए बर्तन... फिर भी देवहूति पर उन अभावों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

अन्नमय शरीर में रहते हैं उनके लिए तीर्थयात्रा करना, शरीर को कष्ट देना तप है। प्राणमय शरीर में रहते हैं उनके लिए प्राणायाम-आसन आदि करना तप है। जो मनोमय शरीर में रहते हैं उनके लिए भक्तिभाव, आराधना आदि तप है। विज्ञानमय एवं आनंदमय शरीर में जिनकी चेतना रहती है, ऐसे लोगों के लिए ध्यान और तत्त्व-विचार करना तप है।

पत्थर या धातु की मूर्ति में भगवद्बुद्धि करके पूजा और आदर करने से सामर्थ्य आता है, चित्त शुद्ध होता है। पति में तो साक्षात् परमेश्वर विराजमान ही हैं। सुख-सुविधा के अभाव में भी पत्नी देवहूति ने पेड़ के नीचे रहनेवाले, ज्ञान और ध्यान-भजन में लगे हुए कर्दम जैसे पवित्रात्मा पति में परमात्मबुद्धि करके ऐसी सेवा की कि कर्दम ऋषि की वर्षों की तपस्या निर्विघ्न पूरी हुई।

एक दिन कर्दम ऋषि देवहूति से बोले : ''हे मनुनन्दिनी ! तुमने मेरा बड़ा आदर किया है। मैं तुम्हारी उत्तम सेवा और परम भक्ति से बहुत सन्तुष्ट हूँ। सभी देहधारियों को अपना शरीर बहुत प्रिय एवं आदर की वस्तु होता है, किन्तु तुमने मेरी सेवा के आगे उसके क्षीण होने की भी कोई परवाह नहीं की। बताओ, तुम्हारी क्या इच्छा है ?''

तब देवहूति ने अपने दाहिने पैर के अँगूठे से धरती कुरेदते हुए सलज्ज होकर कहा : ''हे नाथ ! मेरे माता-पिता मेरा हाथ आपके हाथ में दे गये थे। हम गृहस्थ जीवन का अनुभव करें, इसलिए हमारा विवाह हुआ था।''

कितनी सुशीलता है भारतीय नारी में ! तन की परवाह किये बिना वर्षों लगी रही पतिसेवा में, फिर भी कोई शिकायत नहीं है जीवन में। पतिसेवा भी कैसी कि पति के कुछ कहे बिना हीं पति के हित की भावना से सेवा की और उनको पता तक न चला ! जो पति के हित की भावना से सेवा करती है वह पतिपरायणा पत्नी, गिरी-गुफा में योगी को जो आनंद मिलता है उस आनंद को घर बैठे ही पा सकती है। किन्तु...

सब ते सेवाधर्म कठोरा।

वेदान्त का तत्त्वज्ञान सुनना या सुनाना इतना कठिन नहीं है जितना जप-ध्यान करना कठिन है। जप-ध्यान करना भी इतना कठिन नहीं है जितना अपनी इच्छा को पति की इच्छा में मिलाकर सेवा कर लेना। यह बहुत ऊँची बात है। ऐसी ऊँची बात में भारत की नारियों का नाम अभी तक इतिहास में है। (क्रमशः)

*

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीआर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जाएगी।

शिला में सृष्टि

[संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से]

'श्री योगवाशिष्ठ महारामायण' में आता है :

एक बार वशिष्ठजी महाराज बैठे थे। इतने में एक विद्याधरी उनके पास आयी। उसने बताया :

''इस सृष्टि के छोर पर लोकालोक पर्वत के पास एक शिला में हमारी दूसरी सृष्टि है। उसके सृष्टिकर्त्ता मेरे पति ही हैं। पहले तो उन्होंने मुझे अपने योगबल से उत्पन्न किया किन्तु जब मैं युवती हुई हूँ तो उन्हें वैराग्य हुआ है। उन्हें वैराग्य तो हुआ है लेकिन अभी तक ब्रह्मज्ञान नहीं हुआ है और मुझे भी संसार की नश्वरता दिख रही है। देखते-देखते आयु क्षीण हुई जा रही है। अतः अब आप तत्त्वज्ञान का उपदेश देकर मुझे और मेरे पति को कृतार्थ करें।''

विद्याधरी के पति में अद्भुत योग-सामर्थ्य था। विद्याधरी भी पतिव्रता थी। किन्तु उसके पति उसकी ओर देखते तक नहीं थे, उस दुःख को मिटाने के लिए वह महापुरुष के पास गयी और महापुरुष के वचनों से उसका दुःख दुःखहारी श्रीहरि को पाने के सुख में बदल गया, ज्ञान में बदल गया। यदि दुःख मिटाने के लिए भी संतों-महापुरुषों के पास जाते हैं तो वह दुःख भी भक्ति बन जाता है। जीवन में यदि सुख आता है और हम महापुरुषों के सेवाकार्य में लग जाते हैं तो वह सुख भी हमें भगवान की भक्ति की ओर ले जाता है।

विद्याधरी ने वशिष्ठजी महाराज से अपनी सृष्टि में चलने की प्रार्थना की और वशिष्ठजी महाराज राजी हो गये। दोनों इस सृष्टि से उड़ते-उड़ते आकाशमार्ग से लोकालोक पर्वत पर एक शिला के समीप पहुँचे और विद्याधरी उस शिला में प्रविष्ट हो गयी। वशिष्ठजी महाराज बाहर ही रह गये। विद्याधरी पुनः बाहर आयी एवं बोली :

''महाराज ! आइए।''

वशिष्ठजी : ''मैं तो इस शिला में प्रवेश नहीं कर सकता।''

विद्याधरी : ''महाराज ! आप मेरी धारणा के साथ अपनी धारणा मिला दीजिए तो आप भी अंदर प्रवेश कर सकेंगे।''

वशिष्ठजी ने वैसा ही किया एवं उस सृष्टि में प्रवेश कर गये। वहाँ वशिष्ठजी ने सुंदर बाग-बगीचे, नंदनवन आदि देखे एवं एक समाधिस्थ पुरुष को भी देखा।

यह तो लाखों वर्ष पुराना इतिहास है लेकिन समर्थ रामदास तो अपने ही युग के हैं। मिरज का मुसलमान सरदार दिलेरखाँ घोड़े पर सवार होकर कहीं जा रहा था। मार्ग में कहीं पर उसने संत जयरामदासजी को यह कहते हुए सुना :

''जो संत के पीछे-पीछे चलता है, वह भगवान को देख लेता है।''

मिरज के सरदार ने घोड़ा रोका। सत्संग की और बातें तो उसके गले नहीं उतरीं किन्तु उपरोक्त बात को अक्षरशः पकड़ लिया। संत के कहने के आशय को तो वह नहीं समझा कि 'संतों की आज्ञा के अनुसार, संतों की बतायी गयी विधि के अनुसार जो साधना करता है उसको भगवान के दर्शन हो जाते हैं...' वरन् संत ने कहे हुए शब्दों को अक्षरशः पकड़ लिया। जयरामदासजी को उसने अपने दरबार में बुलाया और कहा :

यदि दुःख मिटाने के लिए भी संतों-महापुरुषों के पास जाते हैं तो वह दुःख भी भक्ति बन जाता है। जीवन में यदि सुख आता है और हम महापुरुषों के सेवाकार्य में लग जाते हैं तो वह सुख भी हमें भगवान की भक्ति की ओर ले जाता है।

''आपने कहा था कि जो संतों के पीछे-पीछे चलता है वह भगवान को देख लेता है। अब आपको एक दिन की मुहलत दी जाती है। कल मैं आपके पास आऊँगा और आपके पीछे-पीछे चलूँगा। यदि मुझे भगवान के दर्शन न हुए तो आपका सिर काट दिया जायेगा।''

जयरामदासजी बड़े असमंजस में पड़ गये। वे गये समर्थ रामदास के पास और उन्हें सारी बात कह सुनायी। पहले तो समर्थ ने उन्हें दुत्कार दिया किन्तु संतों का हृदय तो करुणामय होता है, अतः वे बोले :

''अच्छा... मिरज के सरदार से जाकर कहो कि समय हो रहा है। संत अभी जा रहे हैं। तुमको आना हो तो पीछे-पीछे आओ। ऐसा करके उस सरदार को ले आओ।''

वे संत ले आये सरदार को। तब तक समर्थ तैयार हो चुके थे। संत को एक घोड़ा दे दिया। मिरज का सरदार भी घोड़े पर था। स्वयं समर्थ भी घोड़े पर बैठे एवं चलते-चलते मिरज के किले तक जा पहुँचे। शत्रुओं पर गोली छोड़ने के लिए किले में जो छोटे-छोटे सुराख किये हुए होते हैं, समर्थ रामदास ने वहीं पर घोड़ा खड़ा कर दिया एवं योग की धारणा की। उन संत से भी योग की धारणा करवा दी। फिर सूक्ष्म रूप से उस सुराख के पार चले गये एवं कहा :

''हम जिस रास्ते से आये हैं उसी रास्ते से तुम भी आ जाओ। यहाँ श्रीरामजी खड़े हैं। हम उनके दर्शन करा देंगे।''

मिरज का सरदार दिलेरखाँ को मुँह की खानी पड़ी और वह लज्जित होकर लौट गया।

इस युग में भी जब समर्थ के लिए सुराख में से जाना संभव था तो वशिष्ठजी के जमाने में तो इस विद्या के धनी कई योगी थे। अतः विद्याधरी की धारणा के साथ अपनी धारणा मिलाकर शिला में प्रविष्ट होना उनके लिए कहाँ कठिन था ?

शिला में प्रविष्ट होने के पश्चात् विद्याधरी ने उस सृष्टि के कर्त्ता समाधिस्थ ब्रह्माजी को दिखाते हुए वशिष्ठजी से कहा :

''मुनिश्रेष्ठ ! ये ही मेरे पति हैं जो मेरा पालन करते हैं। इन्होंने पूर्व काल में मेरे साथ विवाह करने के लिए अपने संकल्प के द्वारा मुझे उत्पन्न किया था। ये पुरातन पुरुष हैं। इन्होंने आज तक मेरे साथ विवाह नहीं किया, इसलिए मैं अब विरक्त हो गयी हूँ। इनको भी वैराग्य हो गया है।

मुनीश्वर ! अब आप मुझको और इनको भी तत्त्वज्ञान का उपदेश देकर उस परब्रह्म परमात्मा के पथ पर लगा दीजिए।'' **(क्रमशः)**

*

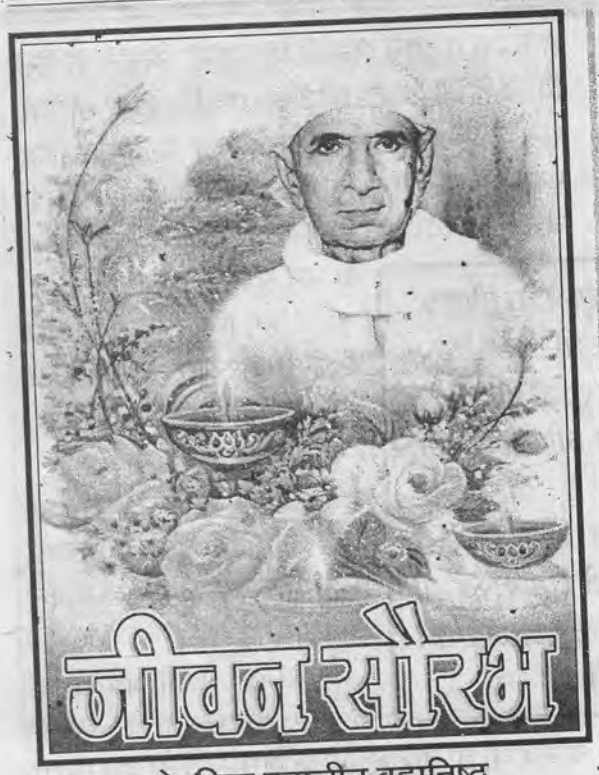

योगसिद्ध ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री

लीलाशाहजी महाराज : एक दिव्य विभूति

[गतांक का शेष]

पूज्य स्वामीजी जहाँ-जहाँ प्रस्थान करते, वहाँ-वहाँ उनकी उपस्थिति मात्र से समग्र वातावरण पवित्र हो जाता था, चारों तरफ चित्त की शांति एवं मन की प्रसन्नता छा जाती थी, संकल्प-विकल्पों की शृंखला नष्ट हो जाती थी एवं समस्त वातावरण मंगलमय, आनंदमय एवं वैकुंठमय हो जाता था।

कोलंबो में श्रद्धालुओं को सत्संग-गंगा में अवगाहन करवाने के बाद जब पूज्य स्वामीजी भारत पधारने के लिए विमान में बैठे तब हजारों प्रेमी, श्रद्धालु भक्तजनों ने उन्हें अश्रुभीनी आँखों से एवं भावविभोर हृदय से विदाई दी।

❋

अंतिम यात्रा

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने अपने कार्यक्षेत्र में कभी भी भौगोलिक सीमाओं की ओर नहीं देखा। उन्होंने तो जातिभेद से पार होकर, मानव जीवन का मूल्य समझाने तथा तन की तंदुरुस्ती सुधारने के लिए, बीमारों को रोगमुक्त करने के लिए एवं आध्यात्मिक मार्ग की शिक्षा देकर जीवन जीने की कला सिखाने के लिए आजीवन अथक प्रयास किए थे। तीसरी विदेशयात्रा के पश्चात् वे पुनः भारत में जनसेवा के कार्यों में निमग्न हो गये।

९३ वर्ष की उम्र में भी वे कर्मशील रहे। इस उम्र में भी अपने सब काम स्वयं ही करते थे। योगासन एवं यौगिक क्रियाएँ भी नियमित रूप से करते थे। सुबह-शाम पैदल घूमने जाते थे। उनका पावन शरीर ९३ वर्ष की उम्र में भी फुरतीला था। वास्तव में देखा जाये तो इन्द्रिय-संयम ही उनके फुरतीले शरीर एवं उत्तम स्वास्थ्य का रहस्य था। इस उम्र में भी उनके सारे दाँत मजबूत थे।

विदेश की तीसरी यात्रा ने पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज को शारीरिक तौर पर काफी थका दिया था। उनकी आँतें एवं शरीर कमजोर हो गये थे। इसलिए थोड़े समय तक वे आदिपुर के आश्रम में जाकर रहे। वहाँ थोड़ा आराम एवं यौगिक क्रियाएँ करके शरीर को पुनः लोककल्याण के कार्यों में प्रवृत्त होने के योग्य बनाया। शारीरिक दुर्बलता होने के बावजूद जनसेवा की उच्च भावना एवं मजबूत आत्मबल के कारण उनकी शारीरिक अवस्था का किसीको भी पता न चल पाया। लोग कभी ज्यादा हैरान

करते और काफी समय तक उन्हें कार्यरत रखते तब न चाहते हुए भी उन्हें कहना पड़ता :

''बाबा ! इस शरीर को अब आराम दो।''

इस अवस्था में पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज बहुत कम बोलते। रोज सुबह जल्दी उठकर आसन एवं तेल-मालिश करके दूर-दूर तक जंगलों में जाकर आत्ममस्ती में लीन हो जाते। ऐसी कमजोर हालत में भी लोकहित की भावना के कारण उन्होंने पुनः देशाटन शुरू कर दिया।

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज की वाणी का एक-एक शब्द एक-एक अनमोल मोती की तरह था। उनकी वाणी हताश भक्तों में हिम्मत भरनेवाली, राहभूले को सच्ची राह दिखानेवाली और जीवनरस का सिंचन करनेवाली थी।

२९ दिसम्बर, १९७२ में पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज पुनः आदिपुर पहुँचे। वहाँ से ५ जनवरी को जूनागढ़ पधारे। जूनागढ़ के बाद वेरावल एवं फिर पालनपुर होते हुए नंदभई पधारे। वहाँ थोड़े दिन रुककर उपलेटा पधारे। उपलेटा से लोककल्याण के कार्य करते हुए जयपुर पधारे। वहाँ थोड़े दिन रहकर खेड़थल, मथुरा वगैरह होते हुए गर्मी के कारण नैनीताल गये। वहाँ कुछ समय तक आराम किया किन्तु श्रद्धालुओं का आना-जाना तो लगा ही रहता था।

''यह शरीर रहे कि न रहे किन्तु तुम लोगों ने विद्यादान फंड जिस उद्देश्य से एकत्रित किया है उसीमें ही उसका सदुपयोग करना एवं इस कार्य को आगे बढ़ाते रहना।''

जुलाई, १९७३ में बारिश के दिन शुरू हुए, अतः नैनीताल से वे हरिद्वार आये। लखनऊ के प्रेमी भक्तों के आमंत्रण को स्वीकार करके लंखनऊ पधारे। वहाँ कुछ दिन तक लोगों को अपनी ज्ञानवर्षा से पावन किया। पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज की वाणी का एक-एक शब्द एक-एक अनमोल मोती की तरह था। उनकी वाणी हताश भक्तों में हिम्मत भरनेवाली, राहभूले को सच्ची राह दिखानेवाली और जीवनरस का सिंचन करनेवाली थी। उसमें कभी कर्त्तव्य-पथ की पगडंडी का मार्गदर्शन तो कभी जीव-ब्रह्म की एकता का ज्ञान तो कभी-कभी प्रभु के प्रेमविरह में तन एवं मन का भान भुला देने का दिव्य सामर्थ्य था। उनके सान्निध्य में सभी का सर्वांगीण विकास हुए बिना नहीं रहता था। लखनऊ में काफी समय के अंतराल के बाद पधारने के कारण उनको ज़्यादा दिन रखने के लिए लोगों की माँग थी, किन्तु २३ जुलाई से कानपुर में अखिल भारतीय ब्रह्मक्षत्रिय सम्मेलन होने के कारण वे ज्यादा नहीं रुके एवं कानपुर के लिए उन्होंने प्रस्थान किया।

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज को पता था कि अब जिंदगी के अंतिम दिन नजदीक आ गये हैं। अतः उस सम्मेलन में वे एक ही बात की ओर बारंबार इशारा करते रहे कि :

''यह शरीर रहे कि न रहे किन्तु तुम लोगों ने विद्यादान फंड जिस उद्देश्य से एकत्रित किया है उसीमें ही उसका सदुपयोग करना एवं इस कार्य को आगे बढ़ाते रहना।''

सम्मेलन के पश्चात् पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज पुनः आराम के लिए आबू के पहाड़ों पर गये। वहाँ थोड़े समय तक आराम करके फिर नंदभई पधारे। अब तो जहाँ-जहाँ उन्होंने धर्मशालाएँ, कुटियाएँ, स्कूलें, आश्रम वगैरह बनवाये थे, वहाँ-वहाँ के ट्रस्ट रजिस्टर्ड करवाते गये।

(क्रमशः)

शुभ संकल्पों का पर्व रक्षाबंधन

[२६ अगस्त '९९ : रक्षाबंधन]

[संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से]

रक्षाबंधन का पर्व भाई और बहन के प्रेम को प्रकट करने का पर्व है। प्रेम में परवशता होती है। भगवान भी प्रेम के वश में होते हैं। भाई-बहन, शिष्य एवं गुरु आदि प्रेम के वश में होकर ही प्रेम की भावनाओं का सदुपयोग करते हैं तथा प्रेमास्पद तक पहुँचते हैं।

साधन-भजन करके जिन्होंने अपना संयम बढ़ाया है उनकी छोटी-सी राखी तो क्या, मात्र उनके शुभ भाव का छोटा-सा धागा भी अपने सद्गुरु के आध्यात्मिक कृपा-प्रसाद को आत्मसात् करने में सक्षम बना देता है।

अपने व्यवहार में भी आप प्रेम भर दीजिये। प्रेम का आशय यहाँ फिल्मी दुनिया के प्रेम से नहीं है, क्योंकि वह तो मोह है। सच्चा प्रेम तो वह है जिसमें दिये बिना न रहा जाय जबकि मोह में तो लिये बिना नहीं रहा जाता है। प्रेम में बहन भी भाई को कुछ-न-कुछ दिये बिना नहीं रहती तथा भाई भी अपनी बहन को कुछ-न-कुछ दिये बिना नहीं रहता।

हमारी भारतीय संस्कृति में त्याग की बड़ी महिमा है, जो देने में विश्वास रखती है, लेने में नहीं।

ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

'यह सारा जगत ईश्वर की सत्ता से ओत-प्रोत है। इसमें त्याग से जियो। परिग्रह करके कब तक जियोगे ?'

भाई के पास कुछ है तो बहन के लिये त्याग करे। गरीब-से-गरीब बहन भी अपने भैया के लिए कुछ-न-कुछ शुभकामना तो कर ही लेती है। भाई-बहन, संत और साधक तथा गुरु और शिष्य के बीच की शुभकामनाएँ व भावनाएँ फलित करने के लिये यह पर्व मनाया जाता है।

अपने साधन की रक्षा के लिये आज हम भगवान और गुरु की कृपा को आमंत्रित करेंगे। ऐहिक वस्तुओं की रक्षा भले भाई लोग करें, परन्तु परम तत्त्व के मार्ग पर जाते हुए साधकों के साधन की रक्षा के लिये परम तत्त्व को पाये हुए ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों तथा सच्चिदानंदघन परब्रह्म परमात्मा की कृपा तो अनिवार्य है।

भगवद्प्राप्ति की इच्छा दृढ़ होती जाय... जीवनरूपी सूर्य अस्त होने से पूर्व ही हमारी मोक्ष की यात्रा पूरी हो जाये, इस हेतु श्रीहरि से प्रार्थना करें कि इस रक्षाबंधन के पावन पर्व पर हमारी सत्यप्राप्ति की जिज्ञासा तथा सत्यस्वरूप हरि के अनुभव से उठी पवित्र वृत्तियों की रक्षा हो।

आज के पावन दिवस पर अपने परम पावन स्वरूप में विश्रांति पाने का संकल्प करते हुए श्रीहरि एवं ईश्वरप्राप्त संत को स्नेह करते हुए हम अपनी आध्यात्मिक साधना की सुरक्षा एवं अपने लक्ष्य 'ईश्वरप्राप्ति' के मार्ग में आनेवाले प्रलोभनों से रक्षा के लिये प्रार्थना करते हैं : ''हे मेरे सद्गुरुदेव !

हे प्रभु !! हमारी रक्षा करना । संसार की तुच्छ वासनाओं, इच्छाओं में ही हमारा जीवन कहीं समाप्त न हो जाए, ऐसी कृपा करना ।''

रक्षाबंधन का पर्व हमें सावधान करता है कि हे साधक ! तू विकारों से अपनी रक्षा चाहता है तो आज संकल्प कर । मोहमाया से रक्षा चाहता है तो संकल्प कर और उस अन्तर्यामी प्रभु व गुरुदेव से प्रार्थना कर कि :

''हे मेरे सद्गुरुदेव ! जब-जब दुनिया की उलझनों और आकर्षणों से मैं गिर जाऊँ, तब-तब आप मेरी रक्षा करना । हे व्यापक चैतन्य में रमण करनेवाले आत्मवेत्ता, ब्रह्मवेत्ता गुरुदेव ! हम आपको धागे की राखी नहीं, परन्तु श्रद्धा की राखी तथा प्रार्थना की राखी भेज रहे हैं कि जब-जब हम संसार में उलझ जाएँ तब-तब आप हमारे अन्तर-प्रदेश को परमात्मा की ओर, अपनी ज्ञाननिष्ठा की ओर, अपनी प्रेमाभक्ति व हरिभक्ति की ओर आकर्षित करना, आनंदित करना ।''

ऐहिक वस्तुओं की रक्षा भले भाई लोग करें, परन्तु परम तत्त्व के मार्ग पर जाते हुए साधकों के साधन की रक्षा के लिये परम तत्त्व को पाये हुए ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों तथा सच्चिदानंदघन परब्रह्म परमात्मा की कृपा तो अनिवार्य है ।

सद्गुरु को राखी का धागा बाँधने के बावजूद भी अगर तुम्हारे जीवन में संयम नहीं, संकल्प की दृढ़ता नहीं, प्रेम की शुद्धि नहीं तो तुमने रक्षाबंधन के महत्त्व को ठीक-से जाना ही नहीं । असावधान मनुष्य भारी-भारी राखियाँ बाँधने के बाद भी फिसलता रहता है । साधन-भजन करके जिन्होंने अपना संयम बढ़ाया है उनकी छोटी-सी राखी तो क्या, मात्र उनके शुभ भाव का छोटा-सा धागा भी अपने सद्गुरु के आध्यात्मिक कृपा-प्रसाद को आत्मसात् करने में सक्षम बना देता है ।

संकल्पों में अथाह शक्ति होती है । शरीर और मन की रक्षा करने के लिये संकल्प करने का नाम है रक्षाबंधन । जिन वस्तुओं से हमारा, हमारे शरीर तथा मन का पतन होता हो, उन वस्तुओं अथवा व्यवहार को सदा के लिये त्यागने के संकल्प करने का दिन रक्षाबंधन है । संकल्पों को साकार करने के लिये ही ऋषियों ने एक छोटा-सा धागा ढूँढ़ लिया । इस छोटे-से धागे को कर्मावती ने हुमायूँ के पास भेजा तो वह मुसलमान राजा भी उसके शुभ संकल्प से बँध गया । संकल्प को सिद्ध करने के लिये ही तुम सूर्यनारायण को अर्घ्य देते हो । 'सूर्यनारायण को पानी पहुँचता होगा या नहीं...' यह प्रश्न नहीं है, परन्तु तुम्हारे संकल्प को साकार करने के लिये पानी का लोटा एक साधन है । ऐसे ही राखी भी संकल्प साकार करने में निमित्त बनती है ।

रक्षाबंधन के दिन संकल्प करना चाहिये कि मेरी मनःशक्ति कहीं इधर-उधर न बिखर जाय, कुसंस्कार मुझ पर कहीं कब्जा न जमा लें क्योंकि सच्चरित्रता का बल धन, सत्ता और सौन्दर्य के बल से बहुत बड़ा होता है ।

रक्षाबंधन के शुभ दिवस पर कोई ऐसी गाँठ बाँध लो, नियम ले लो कि प्रतिदिन कम-से-कम ग्यारह माला तो करेंगे ही... महीने-पन्द्रह दिनों में कम-से-कम एक-दो दिन मौन रहेंगे, एकांत में रहेंगे... बारह महीने में एक सप्ताह 'मौन मंदिर' में रहकर तपस्या करेंगे... ऐसी कुछ गाँठें बाँध लो, अपना काम बन जाएगा... बेड़ा पार हो जाएगा ।

कोई बहन नहीं चाहती कि 'मेरा भाई दीन-हीन या दुर्बल व्यक्ति की नाईं संसार में घसीटा जाय' अपितु चाहती है कि 'मेरा भैया बल, बुद्धि, ऐश्वर्य, ज्ञान से सम्पन्न हो ।' ऐसी शुभ भावना से

उसके ललाट पर तिलक करती है, मानो उसे त्रिलोचन बनाती है, शिवनेत्र खोलने की शुभकामना करती है, आयुष्यमान्, बुद्धिमान्, वीर्यवान्, ज्ञानवान् होने का शुभ भाव बरसाती है और अपने हाथों से तिलक करती है, राखी बाँधती है। रक्षाबंधन... 'मेरे भैया की रक्षा हो और जिस सत्य, ज्ञान, प्रकाश से मानव में देवत्व जागता है, ऐसा दिव्य ज्ञानप्रकाशरूप शिवनेत्र प्रगट हो मेरे भैया का। आयुष्यवान्, बलवान् तो हो, ऐहिक ज्ञान के साथ आत्मा-परमात्मा के ज्ञान से भी मेरा भैया संपन्न हो। भुक्ति-मुक्ति (भोग-मोक्ष) मिले मेरे स्नेहपात्र सहोदर भैया को...' ऐसा स्नेह-प्रेम बरसाती है भगिनी। भैया भी उस रक्षासूत्र, तिलक और बहन के स्नेह-प्रसाद से प्रफुल्लित होकर उसकी रक्षा करना एवं उसके जीवन में आनेवाली कठिनाइयों में उसकी सहायता करना अपना कर्त्तव्य मानता है। ...और केवल अपनी सहोदर बहन तो क्या, अड़ोस-पड़ोस की बहनों के प्रति भी कहीं मन में विकार की आँधी आती है तो यह रक्षाबंधन का दिवस और राखी का यह कच्चा धागा पक्का संयम और उत्तम समझ देने में सहायक होता है। अड़ोस-पड़ोस के भाई-बहन यौवन के विकारी आवेगों से बचने के लिए भी एक-दूसरे को राखी के इस पवित्र बंधन में बाँधकर विकारों के वेगों से अपनी रक्षा कर लेते हैं। कैसी है भारत के ऋषियों की दूरदृष्टि !

भगवद्प्राप्ति की इच्छा दृढ़ होती जाय... जीवनरूपी सूर्य अस्त होने से पूर्व ही हमारी मोक्ष की यात्रा पूरी हो जाये, इस हेतु रक्षाबंधन के पावन पर्व पर श्रीहरि से प्रार्थना करें।

कुन्ताजी ने अभिमन्यु को राखी बाँधी थी, लक्ष्मीजी ने राजा बलि को, कर्मावती ने हुमायूँ को राखी भेजी थी। हुमायूँ भाई-बहन के इस पवित्र भाव से बँधकर भक्षक भाव को छोड़ रक्षक बन गया था। छोटे एवं पतले इस सूत के धागे ने कई सपूतों को सुरक्षा के शिखर पर पहुँचा दिया है।

इस पर्व पर बहनें भाइयों की उन्नति व मंगल चाहें, भाई बहनों को सुरक्षित-सम्मानित करने का संकल्प लें।

यौवन के अन्धे विकारों से बचाकर यह पवित्र धागा सन्मार्ग की ओर ले जाता है। संयम, साहस, सदाचार और परस्पर भलाई की भावना से भरे इस सुन्दर उत्सव को श्रावणी पूर्णिमा, रक्षाबंधन और नारियल पूर्णिमा भी कहते हैं। समुद्री नाविक इस दिन समुद्रदेव को अपनी सुरक्षा के लिए प्रार्थना करते हुए नारियल अर्पण करते हैं। बहादुर समुद्री नाविक अपनी उँगली का एक बूँद रक्त अर्पण कर सागरदेव से प्रार्थना करते हैं कि : 'तेरे विशाल जलराशि में हम अपना काम-काज करके सुरक्षित जियें।' ब्राह्मण लोग इस पूर्णिमा को अपना जनेऊ बदलते हैं, सप्त ऋषियों को याद करते हैं, उनके आत्मज्ञान, समता और परम सुख देनेवाले परमात्म-ज्ञान की यात्रा में दृढ़ होने का संकल्प करते हैं।

बहन भाई को त्रिलोचन और शिष्ट पुरुष के रूप में देखने का संकल्प करती है। भाई बहन को सुखी व सुरक्षित रखने का संकल्प करता है। सामुद्रिक वाणिज्य-व्यापार करनेवाले समुद्री नाविक समुद्रदेव से अपनी सुरक्षा चाहते हैं। ब्राह्मण जनेऊ बदलकर सप्त ऋषियों का सुमिरन और शुभ संकल्प करते हैं।

हम भी इस पर्व का पूर्ण लाभ उठाएँ और किये हुए शुभ संकल्प पर अडिग रहें।

ॐ... ॐ... दृढ़ता ! ॐ... ॐ... पवित्रता ! ॐ... ॐ... पुरुषार्थ ! ॐ... ॐ... प्रभुप्रीति ! ॐ शांति... ॐ शांति... ॐ शांति... ॐ आनंद...

मंदिर टूटने से बच गया...

[१८ अगस्त '९९ : तुलसी जयंती]

[संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से]

औरंगजेब को राज्य मिल गया था फिर भी काम, क्रोध, लोभ एवं बड़ा कहलवाने की वासना के कारण ही उसने अन्याय किया, मंदिरों को तोड़ा, बहुतों को सताया। आखिरकार वह अभागा काशी गया और संत तुलसीदासजी को सताया। उसका इरादा भगवान विश्वनाथ के मंदिर को तोड़ने का था।

उस समय गोस्वामी तुलसीदासजी वहीं पर थे। किसीने औरंगजेब से उनके बारे में कहा :

''ये हिन्दुओं के जाने-माने संत हैं। अगर इनकी सुन्नत हो जाये, अगर ये मुस्लिम धर्म को अपना लें तो बाकी के हिन्दू भी मुसलमान बन जायेंगे।''

उस बेवकूफ औरंगजेब को पता ही नहीं था कि जो व्यक्ति जिस धर्म में है वहीं उसका आध्यात्मिक उत्थान हो सकता है। किसीको जबरन पकड़कर अपने मजहब में घसीटकर लाना और इससे खुदा राजी होता है यह मानना, यह तो बेवकूफों की बातें हैं, मूर्खों की बातें हैं।

उस मूर्ख औरंगजेब ने संत तुलसीदासजी से कहा : ''ऐ काफिर ! इधर क्यों बैठा है ?''

संत तुलसीदास ने कोई जवाब नहीं दिया। औरंगजेब के उत्तेजक वचनों ने तुलसीदासजी के हृदय में न भय उत्पन्न किया न क्षोभ, न उत्तेजना उत्पन्न की न घृणा और न कायरता पैदा की न वियोग की भावना क्योंकि काम, क्रोध और लोभ इन शत्रुओं के सिर पर पैर रखकर वे महान् बन चुके थे।

औरंगजेब के वचनों ने तुलसीदासजी के हृदय में कोई चोट नहीं पहुँचायी। वह बकता जा रहा है और तुलसीदासजी शांति से सुने जा रहे हैं।

जो व्यक्ति भीतर से शांत रह सकता है वही बड़े काम कर सकता है, वही शत्रु का मर्दन कर सकता है, शत्रु की नाक में दम ला सकता है।

उन लोगों को सत्ता मिलती है तो हिन्दू साधु-संतों को बोलते हैं कि 'यह करके दिखाओ... वह करके दिखाओ...' लेकिन जब हिन्दू सम्राटों को सत्ता मिली तो उन्होंने कभी मुल्ला-मौलवियों को नहीं सताया। सनातन धर्म में ही यह उदारता है। इसका मतलब यह भी नहीं है कि सनातन धर्मवालों को कायर होना चाहिए। नहीं, वीर होना चाहिए, बुद्धिमान होना चाहिए।

जो शत्रुओं की बातों से उत्तेजित हो जाता है वह शत्रुओं से पराजित हो जाता है। किन्तु जो उत्तेजित नहीं होता वह विजयी हो जाता है क्योंकि शांत मन में ही उत्तम विचार आ सकते हैं। धर्म आपको यह नहीं सिखाता कि किसीकी जरा-सी कठोर बातें सुनकर ही तलवारें उठा लो। नहीं... धर्म क्रूरता नहीं सिखाता है और कायरता भी नहीं सिखाता, वरन् धर्म तो यह सिखाता है कि तुम्हारा तन तंदुरुस्त, मन प्रसन्न और बुद्धि का ऐसा

विकास हो कि परिस्थितियों के सिर पर पैर रखकर परमात्मा का साक्षात्कार कर लो। धर्म तुम्हें गहराई में जाने की कला सिखाता है।

धर्म ते बिरती योग ते ज्ञाना।
ज्ञान ते मोक्ष पावै पद निर्वाणा॥

धर्म से वैराग्य, वैराग्य से ज्ञान और ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

तुलसीदासजी को वह क्रूर औरंगजेब चाहे जैसा-तैसा सुनाये जा रहा था। सत्ता मिल जाना कोई बड़ी बात नहीं लेकिन सत्ता का सदुपयोग करना बड़ी बात है। सत्ता का दुरुपयोग किया उस अंधे ने।

अकबर थोड़ा सुलझा हुआ था जबकि औरंगजेब उलझा हुआ। दूसरे भी कई ऐसे आये। नामदेव को भी औरंगजेब जैसे किसी उलझे हुए सम्राट ने बड़ा सताया था लेकिन नामदेव भी क्रुद्ध नहीं हुए थे। उसको नामदेवजी ने दिन के तारे दिखा दिये थे।

जो व्यक्ति जिस धर्म में है वहीं उसका आध्यात्मिक उत्थान हो सकता है। किसीको जबरन पकड़कर अपने मजहब में घसीटकर लाना और इससे खुदा राजी होता है यह मानना, यह तो बेवकूफों की बातें हैं, मूर्खों की बातें हैं।

उन लोगों को सत्ता मिलती है तो हिन्दू साधु-संतों को बोलते हैं कि 'यह करके दिखाओ... वह करके दिखाओ...' लेकिन जब हिन्दू सम्राटों को सत्ता मिली तो उन्होंने कभी मुल्ला-मौलवियों को नहीं सताया कि 'यह करके दिखाओ... वह करके दिखाओ...' सनातन धर्म में ही यह उदारता है, विशेषता है। सनातन धर्म दूसरों के भी अनुकूल हो जाता है।

इसका मतलब यह भी नहीं है कि सनातन धर्मवालों को कायर होना चाहिए। नहीं, वीर होना चाहिए, बुद्धिमान होना चाहिए। तुलसीदासजी में समझ भी थी और वे शौर्यवान् भी थे।

तुलसीदासजी दिनभर अपनी कुटिया में रहते और सुबह-शाम भगवान विश्वनाथ के मंदिर में बैठते। औरंगजेब ने उनसे पुनः पूछा :

''ऐ काफिर ! इधर क्यों बैठा है ?''

तुलसीदासजी बोले : ''ये मेरे भगवान हैं और तुम्हारे मालिक हैं।''

औरंगजेब : ''तुम्हारे भगवान अगर सच्चे हैं तो उनका यह बैल भी सच्चा होना चाहिए। इसको घास खिलाकर दिखाओ, नहीं तो धर्म बदलो या फिर तलवार के आगे खड़े हो जाओ।''

तुलसीदासजी : ''न ही धर्म बदलना है और न ही तलवार के आगे खड़े रहना है। अब तुम क्या करोगे ?''

औरंगजेब : ''तो फिर बैल को घास खिलाकर दिखाओ।''

तुलसीदासजी : ''नहीं दिखाएँगे।''

औरंगजेब : ''नहीं दिखाओगे तो हम मंदिर तोड़ डालेंगे।''

मंदिर तोड़ने की बात सुनकर लोगों में भय व्याप्त हो गया। तुलसीदासजी अपने शांत स्वभाव में स्थिर होकर आत्मा की गहराई में चले गये। उन्होंने इन्द्रियों को मन में लीन कर दिया, मन को बुद्धि में लीन कर दिया और बुद्धि को उस बुद्धिदाता में बिठाकर संकल्प किया। फिर उन्होंने घास लेकर जैसे ही उस बैल के सामने रखा तो पत्थर के बैल में चेतना आई और उसकी जिह्वा बाहर निकली। औरंगजेब घबरा गया और वहाँ से पलायन हो गया। इस प्रकार भगवान विश्वनाथ का मंदिर टूटने से बच गया।

जड़-चेतन सभी में व्याप्त ईश्वर अपनी लीला दिखाने के लिए कभी-कभी किसी संत के द्वारा, किसी घटना के द्वारा प्रगट हो जाते हैं। तुलसीदासजी की कृपा से विश्वनाथ का मंदिर अन्यायी औरंगजेब के हाथों टूटने से बच गया।

रतनबाई की गुरुभक्ति

[संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से]

गुजरात के सौराष्ट्र प्रान्त में नरसिंह मेहता नाम के एक उच्च कोटि के महापुरुष हो गये हैं। वे जब भजन गाते थे तब श्रोतागण भक्तिभाव से सराबोर हो उठते थे।

दो लड़कियाँ नरसिंह मेहता की बड़ी भक्तिन थीं। लोगों ने अफवाह फैला दी कि उन दो कुँवारी युवतियों के साथ नरसिंह मेहता का कुछ गलत संबंध है।

संत एवं समाज के बीच सदा से ऐसा ही चलता आया है। असामाजिक तत्त्व संत एवं संत के प्यारों को बदनाम करने की कोई भी कसर बाकी नहीं रखते। किन्तु संत-महापुरुषों के सच्चे भक्त उन सब बदनामियों की परवाह नहीं करते, वरन् वे तो लगे ही रहते हैं संतों के दैवी कार्यों में।

कलियुग में बुरी बात फैलाना बड़ा आसान है। जिसके अंदर बुराइयाँ हैं वह आदमी दूसरों की बुरी बात जल्दी से मान लेता है। अफवाह बड़ी तेजी से फैल गयी।

उन लड़कियों के पिता और भाई भी ऐसे ही थे। उन दोनों के भाई एवं पिता ने उनकी खूब पिटाई की और कहा :

''तुम लोगों ने तो हमारी इज्जत खराब कर दी। हम बाजार से गुजरते हैं तो लोग बोलते हैं कि इन्हीं की वे लड़कियाँ हैं, जिनके साथ नरसिंह मेहता का...''

खूब मार-पीटकर उन दोनों को कमरे में बंद कर दिया और अलीगढ़ के बड़े-बड़े ताले लगा दिये एवं चाबी अपने जेब में डालकर चल दिये कि 'देखें, आज कथा में क्या होता है।'

उन दोनों लड़कियों में से एक रतनबाई रोज सत्संग-कीर्तन के दौरान भाव भरे भजन गानेवाले नरसिंह मेहता को अपने हाथों से पानी का गिलास भरकर होठों तक ले जाती थी। लोगों ने रतनबाई का भाव एवं नरसिंह मेहता की भक्ति नहीं देखी लेकिन पानी पिलाने की बाह्य क्रिया को देखकर उलटा अर्थ लगा लिया।

सरपंच ने घोषित कर दिया : ''आज से नरसिंह मेहता गाँव के चौराहे पर ही भजन करेंगे, घर पर नहीं।''

नरसिंह मेहता ने चौराहे पर भजन किया। विवादित बात छिड़ गई थी अतः भीड़ बढ़ गयी थी। रात्रि के १२ बजे। नरसिंह मेहता रोज पानी पीते थे, उसी समय उन्हें प्यास लगी।

इधर रतनबाई को भी याद आया कि : 'गुरुजी को प्यास लगी होगी। कौन पानी पिलायेगा ?' रतनबाई ने बंद कमरे में ही मटके में से प्याला भरकर, भावपूर्ण हृदय से आँखें बंद करके मन-ही-मन प्याला गुरुजी के होठों पर लगाया।

जहाँ नरसिंह मेहता कीर्तन-सत्संग कर रहे थे वहाँ लोगों को रतनबाई पानी पिलाती हुई

नजर आयी। लड़की का बाप एवं भाई दोनों आश्चर्यचकित हो उठे कि : 'रतनबाई इधर कैसे !'

वास्तव में तो रतनबाई अपने कमरे में ही थी। पानी का प्याला भरकर भावना से पिला रही थी, लेकिन उसकी भाव की एकाकारता इतनी सघन हो गयी कि वह चौराहे के बीच लोगों को दिखी।

अतः मानना पड़ता है कि जहाँ आदमी का मन अत्यंत एकाकार हो जाता है, उसका शरीर दूसरी जगह होते हुए भी वहाँ दिख जाता है।

रतनबाई के बाप ने पुत्र से पूछा : ''रतन इधर कैसे ?''

रतनबाई के भाई ने कहा : ''पिताजी ! चाबी तो मेरी जेब में है !''

दोनों भागे घर पर। ताला खोलकर देखा तो रतनबाई कमरे के अंदर ही है और उसके हाथ में प्याला है !

रतनबाई की मुद्रा पानी पिलाने के भाव में है। दोनों आश्चर्यचकित हो उठे कि यह कैसे !

संत एवं समाज के बीच सदा से ऐसा ही चलता आया है। कुछ असामाजिक तत्त्व संत एवं संत के प्यारों को बदनाम करने की कोई भी कसर बाकी नहीं रखते।

कलियुग में बुरी बात फैलाना बड़ा आसान है। जिसके अंदर बुराइयाँ हैं वह आदमी दूसरों की बुरी बात जल्दी से मान लेता है। अफवाह बड़ी तेजी से फैल जाती है।

किन्तु संत-महापुरुषों के सच्चे भक्त उन सब बदनामियों की परवाह नहीं करते, वरन् वे तो लगे ही रहते हैं संतों के दैवी कार्यों में।

ठीक ही कहा है :

इल्जाम लगानेवालों ने
इल्जाम लगाये लाख मगर।
तेरी सौगात समझकर के
हम सिर पे उठाये जाते हैं ॥

*

जिसके चरणों को रावण तक न हिला सका...

[संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से]

भगवान श्रीराम जब सेतु बाँधकर लंका पहुँच गये तब उन्होंने बालिकुमार अंगद को दूत बनाकर रावण के दरबार में भेजा।

रावण ने कहा : ''अरे बंदर ! तू कौन है ?''

अंगद : ''हे दशग्रीव ! मैं श्रीरघुवीर का दूत हूँ। मेरे पिता से तुम्हारी मित्रता थी, इसीलिए मैं तुम्हारी भलाई के लिए आया हूँ। तुम्हारा उत्तम कुल है, पुलस्त्य ऋषि के तुम पौत्र हो। तुमने शिवजी और ब्रह्माजी की बहुत प्रकार से पूजा की है। उनसे वर पाये हैं और सब काम सिद्ध किये हैं। किन्तु राजमद से या मोहवश तुम जगज्जननी सीताजी को हर लाए हो। अब तुम मेरे शुभ वचन सुनो। प्रभु श्रीरामजी तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर देंगे।

दसन गहहु तृन कंठ कुठारी।
परिजन सहित संग निज नारी ॥
सादर जनकसुता करि आगें।
एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागें ॥४॥

(श्रीरामचरित० लंकाकाण्ड : १९-४)

दाँतों में तिनका दबाओ, गले में कुल्हाड़ी डालो और अपनी स्त्रियों सहित कुटुम्बियों को साथ लेकर, आदरपूर्वक जानकीजी को आगे करके इस प्रकार सब भय छोड़कर चलो और 'हे शरणागत का पालन करनेवाले रघुवंशशिरोमणि श्रीरामजी ! मेरी रक्षा कीजिए... रक्षा कीजिए...' इस प्रकार आर्त प्रार्थना करो। आर्त पुकार सुनते ही प्रभु तुमको निर्भय कर देंगे।''

एक बंदर के नन्हें-से बच्चे को इस प्रकार कहते हुए देखकर रावण हँसने लगा एवं बोला :

''क्या राम की सेना में ऐसे छोटे-छोटे बंदर ही भरे हैं ? हाऽऽऽ हाऽऽऽ हाऽऽऽ... यह राम का मंत्री है ? एक बंदर आया था हनुमान और यह वानर का बच्चा अंगद !''

अंगद : ''रावण ! मनुष्य की परख अक्ल-होशियारी से होती है, न कि उम्र से।''

फिर अंगद को हुआ कि 'यह शठ है, ऐसे नहीं मानेगा। इसे मेरे प्रभु श्रीराम का प्रभाव दिखाऊँ।' अंगद ने रावण की सभा में प्रण करके दृढ़ता के साथ अपने पैर जमीन पर जमा दिया और कहा :

''अरे मूर्ख ! यदि तुममें से कोई मेरे पैर हटा सके तो श्रीरामजी जानकी माँ को लिये बिना ही लौट जायेंगे।''

कैसी दृढ़ता थी भारत के उस युवक अंगद में ! कितना साहस और शौर्य था कि जिस रावण से बड़े-बड़े दिग्पाल तक डरते थे उसीकी सभा में उसने रावण तक को ललकार दिया !

मेघनाद आदि अनेकों बलवान् योद्धाओं ने अपने पूरे बल से प्रयास किये किन्तु कोई भी अंगद के पैरों को हटा तो क्या, टस-से-मस तक न कर सका। अंगद का बल देखकर सब हार गये। तब अंगद के ललकारने पर रावण स्वयं उठा। जब वह अंगद के चरण पकड़ने लगा तो अंगद ने कहा :

''मेरे पैर क्या पकड़ते हो रावण ! जाकर श्रीरामजी के पैर पकड़ो तो तुम्हारा कल्याण हो जायेगा।''

यह सुनकर रावण बड़ा लज्जित हो उठा। वह सिर नीचा करके सिंहासन पर बैठ गया।

कैसा बुद्धिमान था अंगद ! फिर रावण ने कूटनीति खेली और बोला :

''अंगद ! तेरे पिता बालि मेरे मित्र थे। उनको राम ने मार दिया और तू राम के पक्ष में रहकर मेरे विरुद्ध लड़ने को तैयार है ? अंगद ! तू मेरी सेना में आ जा।''

अंगद वीर, साहसी, बुद्धिमान तो था ही, साथ-ही-साथ धर्मपरायण भी था। वह बोला :

''रावण ! तुम अधर्म पर तुले हो। यदि मेरे पिता भी ऐसे अधर्म पर तुले होते तो उस वक्त भी मैं अपने पिता को सीख देता और उनके विरुद्ध श्रीरामजी के पक्ष में खड़ा हो जाता। जहाँ धर्म और सच्चाई होती है वहीं जय होती है। रावण ! तुम्हारी यह कूटनीति मुझ पर नहीं चलेगी। अभी भी सुधर जाओ।''

कैसी बुद्धिमानी की बात की अंगद ने ! इतनी छोटी-सी उम्र में ही मंत्रीपद को इतनी कुशलता

कैसी बुद्धिमानी की बात की अंगद ने ! छोटी-सी उम्र में ही मंत्रीपद को इतनी कुशलता से निभाया कि शत्रुओं के छक्के छूट गये। साहस, शौर्य, बल, पराक्रम, तेज-ओज से संपन्न वह भारत का युवा अंगद केवल वीर ही नहीं, विद्वान् भी था, धर्म-नीतिपरायण भी था और साथ ही प्रभुभक्ति भी उसमें कूट-कूटकर भरी हुई थी।

''रावण ! मनुष्य की परख अक्ल-होशियारी से होती है, न कि उम्र से।''

से निभाया कि शत्रुओं के छक्के छूट गये। साहस, शौर्य, बल, पराक्रम, तेज-ओज से संपन्न वह भारत का युवा अंगद केवल वीर ही नहीं, विद्वान् भी था, धर्म-नीतिपरायण भी था और साथ ही प्रभुभक्ति भी उसमें कूट-कूटकर भरी हुई थी।

हे भारत के नौजवानों ! याद करो उस अंगद की वीरता को कि जिसने रावण जैसे राक्षस को भी सोचने पर मजबूर कर दिया। धर्म एवं नीति पर चलकर अपने प्रभु की सेवा में अपना तन-मन अर्पण करनेवाला वह अंगद इसी भूमि पर पैदा हुआ था। तुम भी उसी भारतभूमि की संतानें हो, जहाँ अंगद जैसे वीर रत्न पैदा हुए। भारत की आज की युवा पीढ़ी चाहे तो बहुत कुछ सीख सकती है अंगद के चरित्र से।

काल्ह काम करना जोऊ,
सो तो कीजै आज।
मूल अविद्या-नींद ते,
शीघ्र ही तू अब जाग॥
शीघ्र ही तू अब जाग,
आपना कर ले कारज।
ऐसी मानव-देह फेर,
कब मिलहै आरज॥
कह 'गिरधर' कविराय,
काटकर भ्रम के जाल।
लखो आपको ब्रह्म,
काल का जो है काल॥

'जो काम कल करना है उसे आज ही कर ले। अविद्या की गहरी निद्रा से तू अब शीघ्र ही जाग जा और अपना काम पूरा कर डाल। पता नहीं, यह अमूल्य मानव-तन फिर कब मिलेगा ? गिरधर कवि कहते हैं कि जगत के सत्यता की भ्रांति का जाल काटकर अपने-आपको ब्रह्मस्वरूप देख, जो ब्रह्म काल का भी काल है।'

(गिरधर की 'सुबोध कुंडलियाँ')

सौ अश्वमेध यज्ञों का फल

[संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से]

एक महात्मा गंगा किनारे घूम रहे थे। एक दिन उन्होंने संकल्प किया : 'आज किसीसे भी भिक्षा नहीं माँगूँगा। जब मैं परमात्मा का हो गया, संन्यासी हो गया तो फिर अन्य किसीसे क्या माँगना ? जब तक परमात्मा स्वयं आकर भोजन के लिए न पूछेगा तब तक किसीसे न लूँगा।' यह संकल्प करके, नहा-धोकर वे गंगा-तट पर बैठ गये।

सुबह बीती... दोपहर हुई... एक-दो बज गये... भूख भी लगी किन्तु श्रद्धा के बल से वे बैठे रहे। उन्हें सुबह से वहीं बैठा हुआ देखकर किसी सद्गृहस्थ ने पूछा :

''बाबा ! भोजन करेंगे ?''

''नहीं।''

''मेरे साथ चलेंगे ?''

''नहीं।''

गृहस्थ अपने घर गया लेकिन भोजन करने को मन नहीं माना। वह अपनी पत्नी से बोला :

''बाहर एक महात्मा भूखे बैठे हैं। हम कैसे खा सकते हैं ?''

यह सुनकर पत्नी ने भी नहीं खाया। इतने में स्कूल से उनकी बेटी घर आ गयी। थोड़ी देर बाद

उनका बेटा भी आ गया। दोनों को भूख लगी थी किन्तु वस्तुस्थिति जानकर वे भी भूखे रहे।

सब मिलकर उन संन्यासी के पास गये और बोले :

''चलिए महात्मन् ! भोजन ग्रहण कर लीजिए।''

महात्मा ने सोचा कि एक नहीं तो दूसरा व्यक्ति आकर तंग करेगा। अतः वे बोले :

''मेरे भोजन के बाद मुझे जिस घर से सौ अश्वमेध यज्ञों की दक्षिणा मिलेगी, उसी घर का भोजन करूँगा।''

कैसे हैं वे सबके अंतर्यामी प्रेरक परमेश्वर ! यदि कोई उनको पाने के लिए दृढ़तापूर्वक संकल्प करके चलता है तो उसके योगक्षेम का वहन वे सर्वेश्वर स्वयं करते हैं।

घर आकर नन्हीं बालिका पूजा-कक्ष में बैठी एवं परमात्मा से प्रार्थना करने लगी। शुद्ध हृदय से, आर्त भाव से की गयी प्रार्थना तो प्रभु सुनते ही हैं। अतः उसके हृदय में भी परमात्म-प्रेरणा हुई।

वह पूजा-कक्ष से बाहर आयी। अपने भाई के हाथ में पानी का लोटा दिया एवं स्वयं भोजन की थाली सजाकर, दूसरी थाली से उसे ढँककर भाई को आगे करके चली। भाई पानी छिड़कता हुआ जा रहा था। पानी के छिड़कने से शुद्ध बने हुए मार्ग पर वह पीछे-पीछे चल रही थी। आखिर में बच्ची ने जाकर संन्यासी के चरणों में थाल रखा एवं भोजन करने की प्रार्थना की :

''भगवान के सच्चे भक्त जहाँ रहते हैं, वहाँ पर एक-एक कदम चलकर जाने से एक-एक अश्वमेध यज्ञ का फल होता है।''

''महाराज ! आप भोजन कीजिये। आप दक्षिणा के रूप में सौ अश्वमेध यज्ञों का फल चाहते हैं न ? वह हम आपको दे देंगे।''

संन्यासी : ''तुमने, तुम्हारे पिता एवं दादा ने एक भी अश्वमेध यज्ञ नहीं किया होगा फिर तुम सौ अश्वमेध यज्ञों का फल कैसे दे सकती हो ?''

बच्ची : ''महाराज ! आप भोजन कीजिए। सौ अश्वमेध यज्ञों का फल हम आपको अर्पण करते हैं। शास्त्रों में लिखा है कि : 'भगवान के सच्चे भक्त जहाँ रहते हैं, वहाँ पर एक-एक कदम चलकर जाने से एक-एक अश्वमेध यज्ञ का फल होता है।' महाराज ! आप जहाँ बैठे हैं, वहाँ से हमारा घर २००-३०० कदम दूर है। इस प्रकार हमें इतने अश्वमेध यज्ञों का फल मिला। इनमें से सौ अश्वमेध यज्ञों का फल तो हम आपके चरणों में अर्पित करते हैं, बाकी हमारे भाग्य में रहेगा।''

उस बालिका की तर्कयुक्त एवं अंतःप्रेरित बात सुनकर संन्यासी ने उस बच्ची को धन्यवाद देते हुए भोजन स्वीकार कर लिया।

कैसे हैं वे सबके अंतर्यामी प्रेरक परमेश्वर ! भक्त अपने संकल्प के कारण कहीं भूखा न रह जाये, यह सोचकर उन्होंने ठीक व्यवस्था कर ही दी। यदि कोई उनको पाने के लिए दृढ़तापूर्वक संकल्प करके चलता है तो उसके योगक्षेम का वहन वे सर्वेश्वर स्वयं करते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में उन्होंने कहा भी है कि :

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

''जो अनन्य प्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वर को निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभाव से भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ।'

(गीता : ९.२२)

*

[संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से]

केवल पानी की दो बूँदें माँगीं ?

एक अलमस्त फकीर था। वह खुलेआम मस्जिद के मुल्ला-मौलवियों को असमंजस में डाल दे ऐसी अपनी इष्टमिजाजी मस्ती में मस्त रहता था। वह मुसलमान फकीर स्मरण-चिन्तन से अपने मन-बुद्धि को सूक्ष्म कर चुका था। उसका उद्देश्य पेट पालना, पेट भरना नहीं था बल्कि दिलबर दाता की मस्ती से दिल रँगना था। दिलबर के स्नेह से भरा फकीर का दिल 'या अल्लाह... या अल्लाह...' नहीं करता था अपितु 'या भीक... या भीक...' कहता था।

मुल्ला-मौलवियों ने आपत्ति उठायी। उसे बुरी तरह बदनाम करके अकबर के राजदरबार तक बात पहुँचाई। 'या अल्लाह' के बदले 'या भीक' बोलनेवाला इस्लाम का अपराधी है। उसे अकबर के पास लाया गया। अकबर ने कहा : ''अच्छा ! अपने हिन्दू गुरु भीकाजी का तुम रटन करते हो 'या भीक... या भीक...' उन्हें मिन्नत करो कि बरसात हो।''

सच्चे फकीर ने कर दी अपने सद्गुरु को प्रार्थना। कुछ ही समय में जोरों की बरसात होने पर अकबर ने उसे बाइज्जत छोड़ दिया। वह फकीर अपने प्यारे गुरु भीकाजी महाराज के पास मत्था टेकने और धन्यवाद देने गया। वह धन्यवाद दे, बात करे उसके पहले गुरुजी ने कहा : ''एक राजा के कहने पर जरा-सा पानी ही माँगा, बस ? प्रभु का प्यार माँगता, प्रभु तत्त्व का ज्ञान माँगता, ईश्वर-अल्लाह में स्थिति माँगता ! राजवी दबाव में तेरी बुद्धि दब गई।''

अंतर्यामी परमात्मा, सद्गुरुदेव सच्चे हृदय की पुकार अवश्य सुनते हैं। उनसे प्रार्थना करके जो भी माँगें वह मिलता है किन्तु साधक-शिष्य को चाहिए कि उनसे नश्वर की माँग न करे। माँगे तो उनसे ऐसा ही माँगे कि फिर कुछ माँगना ही न पड़े।

*

पहाड़ी पर भोजन

जो पूर्ण रूप से परमात्मा पर निर्भर हो जाते हैं उनके योगक्षेम का वहन भी परमात्मा स्वयं करते हैं, फिर चाहे किसी भी रूप में करें, पर करते हैं जरूर।

सिंध देश में दो संत एक साथ कहीं जा रहे थे। एक ने दूसरे से कहा : ''सामने पहाड़ी पर नागा बाबा लोग रहते हैं। उन्होंने भण्डारा किया है। हमें भूख भी बहुत लगी है। अतः जाओ, भोजन ले आओ।''

दूसरे संत वसणशाह जब भोजन लेने गये, तब वहाँ एक नागा बाबा ने दो व्यक्तियों का भोजन एक थाली में भरकर दिया। संत जब भोजन करके थाली लौटाने को गये तो न वहाँ नागा बाबा दिखाई दिये, न चूल्हा आदि दिखायी दिया।

वसणशाह ने लौटकर कहा : ''वहाँ तो कोई नजर नहीं आ रहा।''

दूसरा संत : ''वहाँ कोई नहीं है तो थाली लानेवाला कौन था ?''

वसणशाह : ''थाली लानेवाला भी था और थाली तो अब तक मौजूद है। जो हमने भोजन किया उसकी तृप्ति भी हमें हो रही है किन्तु उस पहाड़ी पर नागा बाबा तो क्या, एक चूल्हा तक मौजूद नहीं है। भण्डारे का कोई चिह्न तक मौजूद नहीं है।''

यही है गैबी शक्ति ! वह परमात्मा है **कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थः।**

एकादशी व्रत

[७ अगस्त '९९ : कामिका एकादशी]

युधिष्ठिर ने पूछा : ''गोविन्द ! वासुदेव ! आपको मेरा नमस्कार है ! श्रावण के कृष्ण पक्ष में कौन-सी एकादशी होती है ? कृपया उसका वर्णन कीजिये ।''

भगवान श्रीकृष्ण बोले : ''राजन् ! सुनो । मैं तुम्हें एक पापनाशक उपाख्यान सुनाता हूँ, जिसे पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने नारदजी के पूछने पर कहा था ।

नारदजी ने प्रश्न किया : ''हे भगवन् ! हे कमलासन ! मैं आपसे यह सुनना चाहता हूँ कि श्रावण के कृष्ण पक्ष में जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है ? उसके कौन-से देवता हैं तथा उससे कौन-सा पुण्य होता है ? प्रभो ! यह सब बताइये ।''

ब्रह्माजी ने कहा : ''नारद ! सुनो । मैं सम्पूर्ण लोकों के हित की इच्छा से तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे रहा हूँ । श्रावण मास में जो कृष्ण पक्ष की एकादशी होती है, उसका नाम 'कामिका' है । उसके स्मरणमात्र से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है । उस दिन श्रीधर, हरि, विष्णु, माधव और मधुसूदन आदि नामों से भगवान का पूजन करना चाहिये ।

भगवान श्रीकृष्ण के पूजन से जो फल मिलता है, वह गङ्गा, काशी, नैमिषारण्य तथा पुष्कर क्षेत्र में भी सुलभ नहीं है । सिंहराशि के बृहस्पति होने पर तथा व्यतीपात और दण्डयोग में गोदावरी स्नान से जिस फल की प्राप्ति होती है, वही फल भगवान श्रीकृष्ण के पूजन से भी मिलता है ।

जो समुद्र और वनसहित समूची पृथ्वी का दान करता है तथा जो कामिका एकादशी का व्रत करता है, वे दोनों समान फल के भागी माने गये हैं ।

जो ब्याही हुई गाय को अन्यान्य सामग्रियों सहित दान करता है, उस मनुष्य को जिस फल की प्राप्ति होती है, वही 'कामिका' एकादशी का व्रत करनेवाले को मिलता है । जो नरश्रेष्ठ श्रावण मास में भगवान श्रीधर का पूजन करता है, उसके द्वारा गन्धर्वों और नागोंसहित सम्पूर्ण देवताओं की पूजा हो जाती है ।

अतः पापभीरू मनुष्यों को यथाशक्ति पूरा प्रयत्न करके 'कामिका' एकादशी के दिन श्रीहरि का पूजन करना चाहिए । जो पापरूपी पङ्क से भरे हुए संसारसमुद्र में डूब रहे हैं, उनका उद्धार करने के लिये 'कामिका' एकादशी का व्रत सबसे उत्तम है । अध्यात्म-विद्यापरायण पुरुषों को जिस फल की प्राप्ति होती है, उससे बहुत अधिक फल 'कामिका' एकादशी व्रत का सेवन करनेवालों को मिलता है ।

'कामिका' एकादशी का व्रत करनेवाला मनुष्य रात्रि में जागरण करके न तो कभी भयंकर यमदूत का दर्शन करता है और न कभी दुर्गति में ही पड़ता है ।

लालमणि, मोती, वैदूर्य और मूँगे आदि से पूजित होकर भी भगवान विष्णु वैसे संतुष्ट नहीं होते, जैसे तुलसीदल से पूजित होने पर होते हैं । तुलसी की मंजरियों से श्रीकेशव का पूजन कर लिया हैं, उसके जन्मभर का पाप निश्चय ही नष्ट हो जाता है । जो दर्शन करने पर सारे पापसमुदाय का नाश कर देती है, स्पर्श करने पर शरीर को पवित्र बनाती है, प्रणाम करने पर रोगों का निवारण करती है, जल से सींचने पर यमराज को भी भय पहुँचाती है, आरोपित करने पर भगवान श्रीकृष्ण के समीप ले जाती है और भगवान के चरणों में चढ़ाने पर मोक्षरूपी फल प्रदान करती है, उस तुलसी देवी को नमस्कार है !

या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी स्पृष्टा वपुष्पावनी
रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्तान्तकत्रासिनी ।
प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता
न्यस्ता तच्चरणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नमः ॥

जो मनुष्य एकादशी को दिन-रात दीपदान करता है, उसके पुण्य की संख्या चित्रगुप्त भी नहीं जानते । एकादशी के दिन भगवान श्रीकृष्ण के सम्मुख जिसका दीपक जलता है, उसके पितर स्वर्गलोक में स्थित

होकर अमृतपान से तृप्त होते हैं। घी अथवा तिल के तेल से भगवान के सामने दीपक जलाकर मनुष्य देह-त्याग के पश्चात् करोड़ों दीपकों से पूजित हो स्वर्गलोक में जाता है।''

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : ''युधिष्ठिर! यह तुम्हारे सामने मैंने 'कामिका' एकादशी की महिमा का वर्णन किया है। 'कामिका' सब पातकों को हरनेवाली है, अतः मानवों को इसका व्रत अवश्य करना चाहिये। यह स्वर्गलोक तथा महान् पुण्यफल प्रदान करनेवाली है। जो मनुष्य श्रद्धाके साथ इसका माहात्म्य श्रवण करता है, वह सब पापों से मुक्त हो श्रीविष्णु लोक में जाता है।

['पद्मपुराण' से]

*

'ऋषि प्रसाद' स्वर्णपदक योजना

इस गुरुपूर्णिमा से आगामी गुरुपूर्णिमा तक एक वर्ष के दौरान 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के ज्यादा से ज्यादा सदस्य बनानेवाले पाँच सेवाधारी साधकों को आम सत्संग-सभा में पूज्यश्री के पावन करकमलों द्वारा स्वर्णपदक दिये जायेंगे।

सेवाधारी कृपया ध्यान दें

१. प्रतियोगिता की शुरूआत अंक क्रमांक ८० (अगस्त) से होगी।

२. प्रतियोगिता की शुरूआत व्यक्तिगत स्तर पर बनाये गये सदस्यों से होगी, किसी समिति के या सामूहिक स्तर पर नहीं।

३. प्रतियोगिता में भाग ले रहे नये साधकों को अमदावाद 'ऋषि प्रसाद' मुख्यालय से सेवाधारी क्रमांक लेना अनिवार्य है।

४. अधिक जानकारी के लिए 'ऋषि प्रसाद' मुख्यालय, अमदावाद से सम्पर्क करें।

कंकोड़ा या खेखसा

बड़ी बेर जैसे गोल एवं बेलनाकार एक से डेढ़ इंच के, बारीक काँटेदार, हरे रंग के खेखसे केवल वर्षा ऋतु में ही उपलब्ध होते हैं। ये प्रायः पथरीली जमीन पर उगते हैं एवं एक-दो महीने के लिए ही आते हैं। अंदर से सफेद एवं नरम बीजवाले खेखसों का ही सब्जी के रूप में प्रयोग करना चाहिए।

खेखसे स्वाद में कड़वे-कसैले, कफ एवं पित्तनाशक, रुचिकर्त्ता, शीतल, वायुदोषवर्धक, रुक्ष, मूत्रवर्धक, पचने में हल्के, जठराग्निवर्धक एवं शूल, पित्त, कफ, खाँसी, श्वास, बुखार, कोढ़, प्रमेह, अरुचि, पथरी तथा हृदयरोगनाशक हैं।

* औषधि-प्रयोग *

१. बुखार एवं क्षय : खेखसे (कंकोड़े) के पत्तों के काढ़े में शहद डालकर पीने से लाभ होता है।

२. हरस (मसे) : खेखसे के कंद का ५ ग्राम चूर्ण एवं ५ ग्राम मिश्री के चूर्ण को मिलाकर सुबह-शाम लेने से खूनी बवासीर (मसे) में लाभ होता है।

३. आधासीसी : खेखसे की जड़ को थोड़े से घी में तल लें। उस घी की दो-तीन बूँदें नाक में डालने से आधासीसी के दर्द में लाभ होता है।

४. अत्यधिक पसीना आने पर : खेखसे के कंद का पावडर बनाकर, रोज स्नान के वक्त वह पावडर शरीर पर मसलकर नहाने से शरीर से दुर्गंधयुक्त पसीना आना बंद होता है एवं त्वचा

मुलायम बनती है।

५. खाँसी : खेखसे के कंद का ३ ग्राम चूर्ण सुबह-शाम पानी के साथ लेने से लाभ होता है।

खेखसे की जड़ की दो से तीन रत्ती (२५० से ५०० मिलिग्राम) भस्म को शहद एवं अदरक के रस के साथ देने से भयंकर खाँसी एवं श्वास में राहत मिलती है।

६. पथरी : खेखसे की जड़ का १० ग्राम चूर्ण दूध अथवा पानी के साथ रोज लेने से किडनी एवं मूत्राशय में स्थित पथरी में लाभ होता है।

७. शिरोवेदना : खेखसे की जड़ को कालीमिर्च, रक्तचंदन एवं नारियल के साथ पीसकर ललाट पर उसका लेप करने से पित्त के कारण उत्पन्न शिरोवेदना में लाभ होता है।

विशेष : खेखसे की सब्जी वायु प्रकृति की होती है। अतः वायु के रोगी इसका सेवन न करें। इस सब्जी को थोड़ी मात्रा में ही खाना हितावह है।

खेखसे की सब्जी बुखार, खाँसी, श्वास, उदररोग, कोढ़, त्वचा रोग, सूजन एवं डायबिटीज के रोगियों के लिए ज्यादा हितकारी है। श्लीपद (हाथीपैर) रोग में भी खेखसे की सब्जी का सेवन एवं उसके पत्तों का लेप लाभप्रद है। जो बच्चे दूध पीकर तुरन्त उल्टी कर देते हों, उनकी माताओं के लिए भी खेखसे की सब्जी का सेवन लाभप्रद है।

अपनी आरोग्यता चाहनेवालें, रोगों से बचने के इच्छुक ध्यान रखें :

श्रावणे वर्जयेच्छाकं
दधि भाद्रपदे तथा।
दुग्धमाश्वयुजि त्याज्यं
कार्तिके द्विदलं त्यजेत्॥

'सावन में साग, भादों में दही, क्वार में दूध और कार्तिक में दाल का त्याग कर देना चाहिए।' **(पद्मपुराण : ५५.३३.३४)**

गुरुकृपा का अनोखा चमत्कार

विज्ञान विषय का विद्यार्थी होने के कारण भगवान में मेरी श्रद्धा सिर्फ नाममात्र की थी। वाणिज्य स्नातक की परीक्षा पास करने के बाद मैंने अनुबंधित लेखाकारिता कोर्स (Chartered Accountancy course) में प्रवेश लिया। उस समय मेरे अंदर बहुत अहंकार था कि मैं जो चाहूँ, कर सकता हूँ। इसीके साथ मैंने सी. ए. इन्टरमीडिएट की परीक्षा पास कर ली।

अब मैं सी. ए. की अंतिम परीक्षा में बैठने जा रहा था। उससे करीब १५-२० दिन पहले मेरा विश्वास कमजोर पड़ने लगा और यह बात मन में आने लगी कि चाहे मैं कुछ भी क्यों न कर लूँ, इस बार पास नहीं हो सकता। परीक्षा के निकट आते-आते तो दिमाग ने साथ देना छोड़ दिया। परीक्षा के समय पता नहीं मुझे क्या हुआ कि हाथ से कलम का चलना ही रुक गया। प्रश्न-पत्र आसान था, पर मैं सभी प्रश्नों के उत्तर जानते हुए भी कुछ नहीं लिख पाया। परिणामस्वरूप मैं असफल हो गया। उसके बाद मैं पूरी तरह अवसादग्रस्त (Depressed) हो गया और मुझे हर काम एक मुसीबत लगने लगा। इस संसार में जीने की इच्छा ही खत्म हो गयी। सी. ए. पास करने का विचार तो पूरी तरह से छोड़ ही दिया था।

मेरी माँ ने पूज्य बापूजी की दीक्षा ली हुई है। उसने मुझे हर समय 'हरि ॐ... हरि ॐ...' इस मंत्र का उच्चारण करने को कहा तथा मुख में तुलसीदल रखवाया। सी. ए. की अगली परीक्षा शुरू होने में सिर्फ थोड़ा-सा समय बाकी था। पर भगवान और पू. बापू के आशीर्वाद से मन में आत्मविश्वास उभरने लगा... भगवान के प्रति श्रद्धा होने लगी। सब कुछ भगवान पर अर्पण कर मैं परीक्षा देने चला गया। परीक्षा-भवन में मुझे पता नहीं कि मेरी कलम ने

क्या-क्या लिखा, पर ऐसा लगने लगा कि मैं जो भी लिख रहा हूँ वह ठीक है। मैं प्रत्येक प्रश्न-पत्र हल करने से पहले अपनी माँ तथा पूज्य बापूजी का ध्यान करता। शायद इसी कारण अगले ही साल मैं सी. ए. की अंतिम परीक्षा में पास हो गया। अन्त में, मैं सिर्फ यही कहूँगा :

मेरा अपना कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपता, क्या लागत है मोर ॥

- देवेश गुप्ता, अलवर (राज.).

*

मेरी बहन को जीवनदान मिला...

बात सितम्बर '९८ की है : मेरी बहन को पीलिया हो जाने की वजह से उसे अस्पताल में भर्ती करवाना पड़ा। अस्पताल में चौथे दिन बहन ने होश गँवा दिया। डाक्टर से पूछने पर उन्होंने कहा कि : ''दवाई का नशा है...'' इस तरह दो दिन और बीत गये एवं बहन 'कोमा' में चली गयी। तब तक डॉक्टर ने उसे किसी बड़े अस्पताल में ले जाने के लिए नहीं कहा। जब हमने आखिरी शब्दों में पूछा, तब उसने सूरत ले जाने के लिए कहा। सचमुच, इस युग में डॉक्टर मनुष्य पर प्रयोग करके, यम बनकर खड़े हों- ऐसा ही लगता है।

हम बहन को उसी दशा में सूरत के महावीर हॉस्पिटल में ले गये तो वहाँ भी हमारा 'केस' उन्होंने हाथ में नहीं लिया। तब मुझे निश्चय हो गया कि अब बहन का जीवन हमारे हाथ में नहीं रहा। मेरी चिंता का कोई पार न रहा। फिर हम सीधे डुमसवाला अस्पताल में गये। वहाँ डॉक्टर ने हमारा 'केस' लिया और कहा : ''हालत बिल्कुल सीरियस (गंभीर) है फिर भी आपका भाग्य !'' मेरे तो होश ही उड़ गये। मैंने मन-ही-मन पूज्य बापूजी से प्रार्थना की, बड़ बादशाह की मनौती मानी तथा बहन को पूज्यश्री से मंत्रदीक्षा दिलाने का संकल्प किया। धीरे-धीरे बहन की हालत ठीक होती गयी। वहाँ के डॉक्टरों को भी आश्चर्य हुआ कि इस प्रकार का यह पहला केस है ! डॉक्टरों की दवा के साथ पूज्यश्री के प्रति श्रद्धा के अनुपान ने काम किया और बहन ठीक हो गयी।

भगवान और भगवत्प्राप्त महापुरुषों की महिमा अपार और अनंत है ! उनके श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम...

- हरकिशनभाई लक्ष्मणभाई टंडेल
मु. पो. मेंघर, ता. गणदेवी (गुज.).

इन्दौर : खण्डवा रोड, बिलावली तालाब से सटे हुए संत श्री आसारामजी आश्रम, इन्दौर में तीन दिवसीय विद्यार्थी तेजस्वी तालीम शिविर १५ से १७ जुलाई व गुरुपूर्णिमा महोत्सव १८ से २० जुलाई को संपन्न हुआ।

बड़ी संख्या में आये हुए मध्य भारत के विद्यार्थियों को बुद्धिबल, अनुमानबल, क्षमाबल व शौर्यबल विकसित करने के अनेक यौगिक प्रयोग सिखाते हुए गुरुदेवश्री ने बताया कि :

''योग में अपार बल है। योग के नियमों का पालन करते हुए यदि दृढ़तापूर्वक नियमित रूप से प्राणायाम-ध्यान का अभ्यास किया जाये तो विद्यार्थी अद्भुत सामर्थ्य से युक्त हो सकता है। इस उम्र में तुम्हारे जीवन में ध्यान-प्राणायाम और संयम का सद्गुण आ जाए तो शरीर स्वस्थ, मन प्रसन्न और बुद्धि विलक्षण सामर्थ्य से युक्त हो जाये। पानी भाप बनता है तो उसमें १३०० गुनी ताकत आ जाती है, उसी प्रकार प्राणायाम-ध्यान से मन व बुद्धि में बड़ा सामर्थ्य आता है। निरोगी तन व निर्मल मन के लिए ध्यान व प्राणायाम का अभ्यास जरूरी है।''

जीवन के हर क्षेत्र में एकाग्रता को सफलता की कुंजी बताते हुए योगनिष्ठ पूज्य बापू ने प्राणायाम व ध्यान को प्रमुख साधन बताया। इसका नियमित अभ्यास करने की प्रेरणा देते हुए गुरुदेवश्री ने सूत्रात्मक वाणी में कहा :

''प्राणायाम-ध्यान का नियमित अभ्यास करोगे तो बुद्धि में ज्ञान और मन में प्रसन्नता आयेगी तथा जीवन में हताशा-निराशा फटक नहीं सकेगी एवं उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने की युक्ति सहज में प्राप्त होगी।''

विद्यार्थियों के समुचित शारीरिक व मानसिक विकास के लिए योगासन सिखाये गये तथा लिखित **'सामान्य ज्ञान परीक्षा'** व **'वक्तृत्व स्पर्धा'** आयोजित कर विद्यार्थियों को

पुरस्कृत किया गया।

त्रिदिवसीय गुरुपूर्णिमा महोत्सव में मध्य भारत के साधकों की विशाल संख्या गुरुदर्शन के लिए उमड़ पड़ी जिसे देखकर सहज ही कुंभ का स्मरण ताजा हो रहा था। कई किलोमीटर लंबी ४-४ कतारें, घंटों की प्रतीक्षा, गुरुदर्शन की तीव्र उत्कंठा भारतीय संस्कृति की अविस्मरणीय झलक प्रस्तुत कर रही थी।

ज्ञान, भक्ति और योगमार्ग के अनुभवनिष्ठ पूज्य गुरुदेवश्री ने साधकों को साधना में उन्नति के लिए मार्गदर्शन प्रदान किया तथा सफलता की अनेक अनुभूत कुंजियों से अवगत कराया ताकि वे अपने जीवन से क्षुद्र अहं व क्षुद्र स्वार्थों को तिलांजलि देकर शुद्ध अहं को पहचान ले, सच्चे स्वार्थ यानी 'स्व-अर्थ' को साध ले। मोक्षमार्ग पर आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हुए गुरुदेवश्री ने कहा कि :

''पतित और पापी व्यक्ति भी धर्म के आश्रय से पुण्यात्मा बन जाता है। धर्म वह है जो पिछड़े हुए व्यक्ति को आगे लाये, गिरे हुए को ऊपर उठाये, पतित-से-पतित व्यक्ति को भी पावन रास्ते पर ले आये, साधक को साध्य से अभिन्न कर दे। पापी से पापी व्यक्ति के लिए भी धर्म का द्वार खुला है। वह भी धर्म का आश्रय लेकर पुण्यात्मा-महात्मा हो सकता है।''

प्रतिकूल अथवा दुःखद परिस्थितियों में भी प्रसन्नचित्त व आनंदित रहने की अनुभवमूलक युक्तियाँ बताते हुए गुरुदेवश्री ने विशाल साधक समुदाय को संबोधित करते हुए कहा कि :

''जीवन में कितना भी बड़ा दुःख आ जाए, पर अपने मन में सुख भरने की कला सीख लो। अगर यह कला आप सीख गए तो दुःख का प्रभाव आपको दबोच नहीं सकेगा। यदि व्यक्ति सुख में फँसे नहीं और दुःख में घबराये नहीं तो ये दोनों उसके लिए ईश्वरप्राप्ति के साधन हो जायेंगे। आप जीवन को भौतिक दृष्टि से न देखकर मानसिक दृष्टि से इसका अध्ययन करो, धार्मिक भाव से इसका अनुभव करो तो धार्मिक जीवन का रहस्य आपके समक्ष स्पष्ट होने लगेगा। जीवन की अनिश्चितता से कभी भयभीत न होवें। अनित्यता दृश्य जगत के समस्त पदार्थों में व्याप्त है। नित्यता केवल उस सनातन दृष्टा के देश में है जहाँ देशातीत, कालातीत आत्मतत्त्व का राज्य है और आप उस राज्य के उत्तराधिकारी हो।''

हम वासी उस देश के, जहाँ पारब्रह्म का खेल।
दिया जले अगम का, बिन बाती बिन तेल॥

पूर्णिमा पर बिना गुरुदर्शन के जो अन्न-जल ग्रहण नहीं करते, ऐसे साधकों को अपनी हृदयस्पर्शी वाणी में संदेश देते हुए गुरुदेवश्री ने आह्वान किया कि ऐसे आत्मराज्य को पाने के लिए तुम्हारा जन्म हुआ है।

चातक मीन पतंग जब, पिया बिन नहीं रह पाय।
साध्य को पाये बिना, साधक क्यों रह जाय॥

मध्य प्रदेश के शहरी विकास मंत्री श्री सज्जन सिंह वर्मा भी गुरुपूर्णिमा महोत्सव में शरीक हुए और उन्होंने पूज्य बापू से आशीर्वाद प्राप्त किया। नगर का पुलिस प्रशासन और उसके उच्चाधिकारियों ने खूब सजगता एवं सज्जनता से इस दैवी कार्य में भाग लिया। अंत में स्थानीय श्री योग वेदान्त सेवा समिति ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से इस दैवी कार्य से जुड़े हुए सरकारी, गैर-सरकारी संस्थाओं व सज्जनों को धन्यवाद ज्ञापित किया।

साधकों में साध्य-प्राप्ति के लिए अतीव पिपासा जाग्रत करके पूज्यश्री २० जुलाई को विमान से दिल्ली के लिए रवाना हुए।

दिल्ली : देश की राजधानी दिल्ली के रोहिणी अंचल स्थित स्वर्ण जयंती पार्क में दिनांक : २३ से २५ जुलाई तक गुरुपूर्णिमा महोत्सव संपन्न हुआ। यहाँ लाखों व्यक्तियों की क्षमतावाला 'वाटरप्रूफ' पाण्डाल बनाया गया था। दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार आदि प्रान्तों से आए हुए लाखों साधकों ने दर्शन-सत्संग व लौकिक-पारलौकिक मार्गदर्शन प्राप्त कर धन्यता का अनुभव किया।

पूज्यश्री ने गुरुपूर्णिमा की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लक्षाधिक साधकों के समुदाय को संबोधित करते हुए कहा कि :

''महर्षि वेदव्यास के आदर और गुरुपरंपरा को जागृत रखनेवाली, व्यासपूर्णिमा महोत्सव और आचार्योपासना की यह परंपरा अति प्राचीन है।

जो बड़ों के मार्गदर्शन में नहीं रहेगा, उसका दम्भ नहीं छूटेगा। आदमी बड़ा बनकर रहने के लिए छोटों के बीच रहता है। अपने से बड़े के सामने रहेगा तो सिर झुकाना पड़ेगा, नीचे बैठना पड़ेगा और उसका दिल भी उनके सामने छिपा नहीं रह सकेगा।

सद्गुरु के पास रहकर उनका आचार ही नहीं, उनकी

स्वच्छन्दता भी सीखनी चाहिए। वे चंदन कैसा लगाते हैं, बाल कैसे बनाते हैं इन सबका अनुकरण उनके अनुयायी यह कहते हुए करते हैं कि हमारे गुरुजी ऐसे बाल रखते थे, इसलिए हम भी ऐसा रखेंगे, ऐसा चन्दन लगाते थे तो हम भी वैसा ही लगायेंगे। लेकिन उनसे यह नहीं सीखा जाता कि उनके गुरुजी के बोध में कितना स्वातंत्र्य है कि वे न कर्मपशु हैं, न देवपशु हैं, न इन्द्रियपशु हैं और न ईश्वरपशु हैं। वे पशुत्व से सर्वविध मुक्त हो गये हैं, पशुपाप-विनिर्मुक्त हो गये हैं। ये सब बातें गुरु के पास रहने से मालूम पड़ती हैं।''

पूज्यपाद बापू ने अपने सद्गुरुदेव परम पूज्य स्वामी श्री लीलाशाहजी बापू के सान्निध्य की, उनके मार्गदर्शन की, उनके करुणा-कृपा की झाँकी कुछ प्रसंगों को उद्धृत करते हुए बताई। उन्होंने बताया कि हम गुरु के पास न रहनेवालों को जानते हैं। वे पापमुक्त नहीं हो सकते। उनके जीवन में सर्वविध स्वातंत्र्य तो आ ही नहीं सकता। निगुरे लोगों को बोध नहीं हो सकता।

जिसे दुनिया गलती कहती है वैसी कोई गलती यदि जीवन में आ गई तो, जो गुरु के पास नहीं रहेगा वह कैसे सीखेगा कि उस गलती को एक नजर से किस प्रकार भस्म कर दें? इसीलिए गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः। (१३.७)

आचार्योपासना, पवित्रता के नियमों का पालन, स्थिरता तथा अपने शरीर, मन और इन्द्रियों को वश में रखना यह साधक की उत्तम साधना-पूँजी है।''

२५ जुलाई को प्रातःकालीन सत्र में पधारे हुए भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री चन्द्रशेखर सत्संग संपन्न होने तक सहज-विनम्र भाव से पूज्यश्री की आत्मस्पर्शी अमृतवाणी का रसास्वादन करते रहे। किसीको पता ही नहीं चला कि लक्षाधिक जनमेदनी के बीच भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री भी बैठे हुए हैं। सत्संग सम्पन्न होने पर उन्होंने पूज्यश्री का अभिनंदन करते हुए कहा कि :

''संतों की वाणी ने हर युग में नया संदेश दिया है, नयी प्रेरणा जगायी है। **कलह, विग्रह और द्वेष से ग्रस्त वर्त्तमान वातावरण में बापू जिस तरह सत्य, करुणा और संवेदनशीलता के संदेश का प्रसार कर रहे हैं, उसके लिए राष्ट्र उनका ऋणी है।''**

पूज्य बापू जैसे संतों पर गर्व करते हुए उन्होंने कहा : **''भारत की संस्कृति विश्वकल्याण की राह दिखाने में सक्षम है।''**

पूज्य बापू के निवास पर जाकर भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री चन्द्रशेखर ने अपने इलाके (बलिया) में भी कार्यक्रम देकर जनता-जनार्दन को लाभान्वित करने की प्रार्थना की।

अमदावाद : तीव्र आध्यात्मिक स्पन्दनों से युक्त अमदावाद आश्रम में दिनांक : २७ से २९ जुलाई तक गुरुपूर्णिमा महोत्सव संपन्न हुआ। गुरुदर्शन के लिए यहाँ कई किलोमीटर लम्बी एक-दो नहीं आठ-आठ कतारें लगी हुई थीं। साधकों की विशाल संख्या को ध्यान में रखते हुए काँच की दीवारों से युक्त एक वाहन तैयार किया गया था जिस पर विराजमान होकर पूज्यश्री स्वयं लोगों के बीच पहुँचे। गुरुदर्शन के लिए लगातार तीन दिनों तक दिनभर भक्तों की कतारें चलती रहीं। पूरे देश व विदेशों से कई साधकों का आगमन यहाँ हुआ जिससे ३ दिनों तक यहाँ महाकुंभ-सा दृश्य बना रहा। २९ जुलाई की शाम को पूज्यश्री ने शंख बजाकर गुरुपूर्णिमा महोत्सव के समापन की घोषणा की।

इस महोत्सव में शामिल होने के लिए गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश के अनेक दूरस्थ क्षेत्रों से चले हुए साधकों के अनेक समुदाय रास्ते में सत्संग, भजन, कीर्तन के अतिरिक्त सत्साहित्य का वितरण करते हुए आश्रम पहुँचे तथा उन्होंने पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग प्राप्त कर प्रसाद ग्रहण किया।

राजस्थान के पाली शहर से ८ जुलाई को पैदल चले हुए गुरुप्यारों ने २८ जुलाई को अमदावाद आश्रम पहुँचकर गुरुपूर्णिमा मनाई। प्रकाशा (महाराष्ट्र) व आसपास के इलाकों से भी साधकों ने पैदल यात्रा करते हुए आश्रम में आकर पूर्णिमा मनाई। इसी प्रकार गुजरात के कई इलाकों से भी प्रभु के प्यारे, गुरु के दुलारे मंडली बनाकर कोई १८ दिन में पहुँचे तो कोई १२ दिन में पहुँचे।

घण्टों तितिक्षा सहते, पैदल कीर्तन यात्रा करते हुए गुरुभक्तों को देखकर नासमझ बेचारे कुछ भी सोचें -कहें, पर दीपक से फतिंगे को क्या मजा आता है किसी फतिंगे से पूछकर देखें, जल से मछली को क्या मजा आता है किसी मछली से पूछकर देखें और सद्गुरु के दर्शन-सत्संग से साधक को क्या मजा आता है किसी सत्शिष्य से पूछकर देखें। फतिंगे की दृष्टि दीपक पर, मछली की दृष्टि जल पर, साधक

की दृष्टि अपने साध्य पर और सत्शिष्य की दृष्टि अपने सद्गुरु पर ही होती है। वह दुन्यावी बातों पर ध्यान न देते हुए अपने सद्गुरु प्रदत्त मार्गदर्शन के अनुसार बढ़ता ही चला जाता है और अन्त में अपने परम लक्ष्य- सब दुःखों की निवृत्ति और परमानंद की प्राप्ति कर लेता है।

रेल से, बसों से, गाड़ियों से दिलबर दुलारे गुरुदेव के पास आये हुए भक्तों को इस बार श्रद्धा-भक्ति के साथ संयम का विशेष पाठ पढ़ाया गया। परिणामस्वरूप सभी में संयम के प्रत्यक्ष दर्शन हो रहे थे। ये गुरु के दुलारे गुरुदेवश्री की आज्ञा मानकर स्वयं संयत होने में सफल हुए। समितिवालों व सेवकों के सुंदर आयोजन से इतने विशाल जनसैलाब की सुव्यवस्था सुचारु रूप से हो सकी। सभी के चेहरे पर संयम, शांति, माधुर्य और मस्ती छलक रही थी, अपनी महक महका रही थी।

इस जागृत तप-तीर्थभूमि पर जो आये वे ही जानते हैं कि कैसा आनंद, कैसी शांति और कैसा संयम! कठिनाइयों में भी आनंद और महाभीड़ में भी शांति!

भिन्न-भिन्न जातियों के, भिन्न-भिन्न प्रान्तों के, देशों के लोग अभिन्न परमात्मा की उपासना-स्थली में एकत्व का आनंद ले रहे थे।

साधना का नवीन संकेत देते हुए पूज्यश्री ने सभी साधकों से कहा कि इस गुरुपूर्णिमा से आगामी गुरुपूर्णिमा तक के लिए ये चार नियम ले लो :

१. प्रतिदिन त्रिबंधयुक्त १० प्राणायाम करना। इसकी विधि आश्रम से प्रकाशित **'ईश्वर की ओर'** पुस्तक के पृष्ठ नं. ५५ पर दी गई है।

२. शुक्ल पक्ष की सभी व कृष्ण पक्ष की सावन से कार्तिक माह के मध्य तक की चार एकादशी का व्रत करना।

३. शाम को सूर्यास्त से प्रातः सूर्योदय तक अथवा अपना नित्य नियम पूर्ण होने तक मौन रहना।

४. रात्रि को सोने के पहले १० मिनट **'हरिः ॐ...'** का गुंजन करना।

प्राचीन ऋषि जाबल्य की इस तपोभूमि में, पिछले २७ वर्षों से पूज्यश्री के पावन सान्निध्य से स्पन्दित इस पवित्र भूमि में गुजरात के अलावा मध्य प्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र, हरियाणा व देश के अन्य प्रान्तों के साथ-साथ हाँगकाँग, दक्षिण अमेरिका, स्विट्जरलैण्ड आदि अन्य देशों के भक्त समुदाय भी गुरुदर्शन व सत्संग का लाभ प्राप्त करने हेतु पधारे।

शीघ्र कल्याण के अनेक संकेत गुरुदेवश्री द्वारा दिये गये। इनमें से कुछ यहाँ संकलित हैं जिन्हें हृदयंगम करने से साधकवृंद साधना-पथ पर शीघ्रता से अग्रसर हो सकेंगे :

१. संसार का दुःख ठीक उसकी वासना के अनुपात में होता है। जिसकी जितनी अधिक वासना होगी, उसके लिए दुःख के उतने ही स्थान मौजूद होंगे।

२. किसी भी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति के लिए अन्ध आसक्ति बिल्कुल मत रखो।

३. किसीसे अपने को बाँधो मत। सदैव अपने शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव का चिन्तन करो।

४. जागतिक पदार्थों के संग्रह की इच्छा त्याग दो। उन्नत होने, आत्मा-परमात्मा का अनुभव करके जीते-जी मुक्त होने की इच्छा करो।

५. क्या संसारी पदार्थ तुम्हारी वास्तविक माँग की तृप्ति कर सकेंगे ? क्या तुम उन नाशवन्त पदार्थों से बाँधे जा सकते हो ? तुम्हारे पास धन की वह अनंत राशि है जिसका कभी नाश नहीं होता ? जितना अधिक तुम अपने स्वभाव को पूर्ण बनाओगे, निर्मल बनाओगे, छल-छिद्र व कपट से विनिर्मुक्त बनाओगे, उतना ही अधिक उस सनातन धन को उपार्जित कर पाओगे।

६. इन्द्रियपरायण जीवन से मुख मोड़कर सद्गुरु व सत्शास्त्र अनुमोदित जीवन बनाओ।

७. विश्वास रखो : यदि तुम केवल सत्य की ओर अग्रसर हो रहे हो तो संसार की समस्त शक्तियाँ तुम्हारे अभ्युदय के लिए तुम्हारे साथ कार्य कर रही हैं।

८. जैसे शेर अपने शिकार की तलाश करता है, जैसे कामी पुरुष अपनी भोगेच्छा-तृप्ति के लिए प्रयत्न करता है, जैसे भूखा मनुष्य भोजन की इच्छा करता है, जैसे पानी में डूबता हुआ मनुष्य रक्षा के लिए पुकारता है, ठीक उसी तीव्र आतुरता और व्याकुलता के साथ तुम अपना सत्य स्वभाव पहचानने की तड़प जगाओ, ब्रह्मभाव पाने की तड़प जगाओ, प्रभुप्रेम पाने की तड़प जगाओ। वह तुमसे दूर नहीं है। अनुभव पूर्ण होने पर तुम स्वयं कह उठोगे :

वो थे न मुझसे दूर, न मैं उनसे दूर था।
आता न था नजर, तो नजर का कसूर था॥

गुरुपूर्णिमा महोत्सव में सद्गुरुदेव के पावन करकमलों द्वारा विमोचन

दस नई ऑडियो कैसेटें : ★ स्वभाव कैसे बदले ? ★ अनंत की प्रीति ★ समर्थ श्री रामदास का सामर्थ्य ★ परम शांति कैसे मिले ? ★ परमात्मध्यान ★ स्वधर्म-पालन ★ ज्ञान के चुटकुले (भाग : १-२) ★ व्यवहार में ब्रह्मज्ञान (भाग : १-२)

पाँच नई ऑडियो सी. डी. : ★ स्वभाव कैसे बदले ? ★ अनंत की प्रीति ★ समर्थ श्री रामदास का सामर्थ्य ★ ज्ञान के चुटकुले (भाग : १-२)

पूज्य बापू के अन्य सत्संग-कार्यक्रम

दिनांक	शहर	कार्यक्रम	स्थान	संपर्क फोन
२६ अगस्त '९९	बील आश्रम वडोदरा	रक्षाबंधन महोत्सव	संत श्री आसारामजी आश्रम, भायली स्टेशन के सामने, सील्चर कंपनी के सामने, पादरा रोड, बील गाम, वडोदरा।	(०२६५) ३५६४४४, ३५७६४४
२ से ४ सितम्बर '९९	सूरत आश्रम (संभावित)	जन्माष्टमी महोत्सव सत्संग समारोह	संत श्री आसारामजी आश्रम, वरियाव रोड, जहाँगीरपुरा, सूरत।	(०२६१) ६८५३४१, ६८७९३६.

बील आश्रम (वडोदरा) पहुँचने के लिए सहायक नक्शा प्रस्तुत है।

* पूर्णिमा दर्शन *

२६ अगस्त '९९ रक्षाबंधन महोत्सव
संत श्री आसारामजी आश्रम,
भायली स्टेशन के सामने, सील्चर कंपनी के सामने, पादरा रोड, बील गाम, वडोदरा।
फोन : ३५६४४४, ३५७६४४.

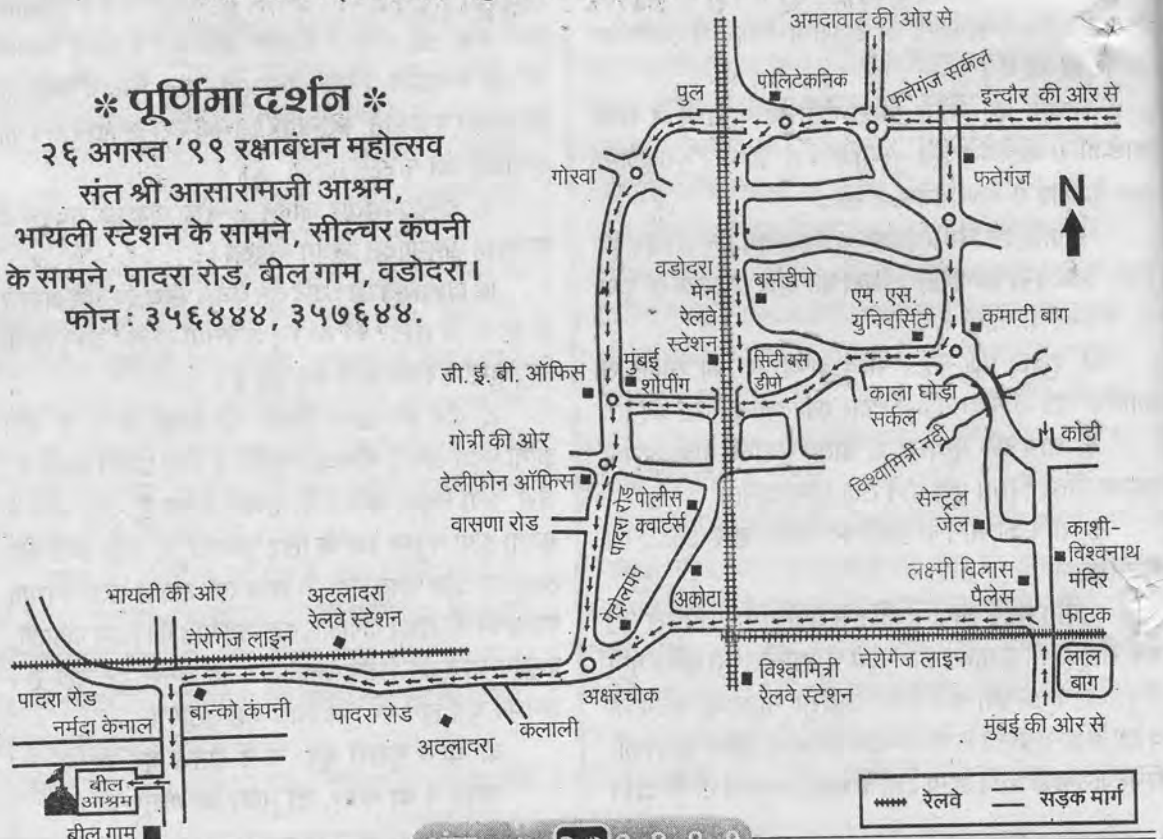

काँच की केबिन से सुसज्ज गाड़ी में विराजमान होकर
पूज्यश्री ने नजदीक में जाकर
अपने प्यारे भक्तों को दर्शन दिया।

संसार की गाड़ी तो धुआँ- धूल उड़ाती है किन्तु गुरु के प्यारों की
यह कताररूपी गाड़ी तो आनंद-भक्तिरस बरसाती है।
(गुरुपूर्णिमा- अमदावाद आश्रम)

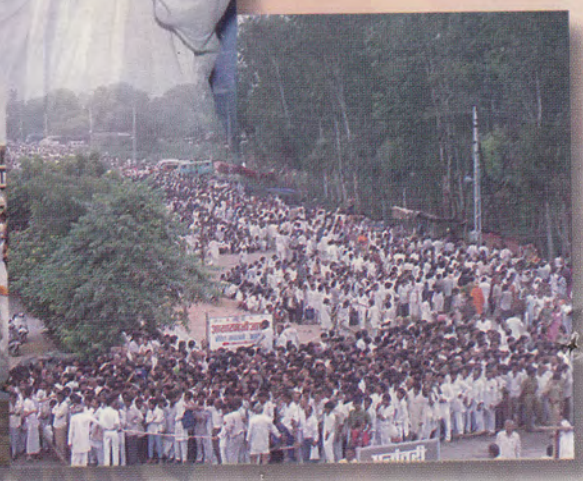

✲ चौबेजी : 'पेट भारी रहता है' ✲ मेरे दादाजी सारी दुनिया छोड़ गए ✲ ठनठनपाल ✲ बुद्धू हलवाई ✲ उल्लू को दिन में चाँद दिखता है ✲ गुलाम नवीर ✲ आर्किटेक्ट : 'भगवान ने ऐसा क्यों किया ?' ✲ ब्रह्मचारी ने बारात देखी ✲ दसवाँ तू है ✲ गधे का बच्चा कौन ? स्वाहा-आहाऽऽ ✲ अकबर-बीरबल प्रसंग : बेगम का षड्यंत्र-सभा में बहरे कितने ? अकबर : 'मैं हिन्दू बन सकता हूँ ?'- बीरबल का बेटा रूठा।

गुरुपूर्णिमा महोत्सव में दस नई ऑडियो कैसेटों एवं पाँच सी. डी. का विमोचन करते हुए पूज्यश्री।

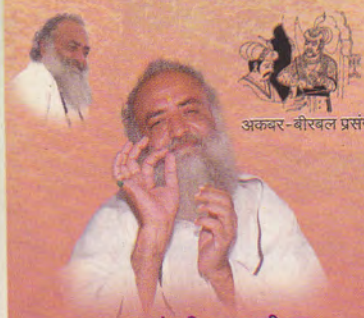

R.N.I. No. 9739/... LICENSED TO POST W/O PRE-PAYMENT : AHMEDABAD PSO LICENCE NO. 207 Regd. No. GAMC/1... & BOMBAY, BYCULLA PSO LICENCE NO. 03 Regd. No. MH/MR/... DELHI PSO LICENCE NO. DL-11513/99.
POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH. POSTING FROM BOMBAY 9-10 OF EVERY MONTH